मोरी धरती मैया



प्रो. श्रीचन्द्र जैन

मोरी धरती मैया

❀

प्रो० श्रीचन्द्र जैन, एम० ए०

आगरा
यूनिवर्सिटी बुक डिपो
कालेज रोड

१९५७] [मूल्य २.५० न. पै.

प्रेम प्रिंटिंग प्रेस आगरा ।

दो शब्द

'मोरी धरती मैया' में मेरे निबन्ध संगृहीत हैं। इनका संक्षिप्त रूप कई पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। ये समस्त निबन्ध धरती माता की जीवन-गाथा से ही संबद्ध हैं। धरिणी का सर्वोत्तम फल अन्न है जो स्वयं ब्रह्म है। किसान धरा का सुपुत्र है। वृषभ ही तो भू के धर्म का संरक्षण करता है। महीरूह (वृक्ष) मही की चिरंतन निधि है। कूप-सर-सरिताएँ वसुंधरा की स्नेह-सिक्तता के जीवित प्रतीक हैं। आदिवासी भूमि के आदि पूजक हैं। प्रहेलिका और लोकोक्तियाँ हमारी वृद्धा विश्वम्भरा धात्री की विलक्षण मेधा और अनुभवशील चातुर्य के सूत्र हैं। वर्षा वसुमती की प्रेम-धारा है। वसन्त और होली वसुधा के समुल्लास के क्षण हैं। ग्राम हमारी पूज्या काश्यपी के निवास-स्थल हैं। बापू इस सर्वसहा की सहनशीलता के पुनीत उदाहरण हैं।

लोक-गीत धरती मैया के सुख-दुख की कहानियाँ हैं। कमल मेदिनी का सौभाग्य-चिह्न है।

इस प्रकार ये मेरे निबन्ध रत्नगर्भा विपुला के स्तवन के स्वर हैं, जिनमें उसके शाश्वत रूप का चिन्तन और ध्यान है।

मैं उन आदरणीय विद्वानों एवं कवियों के प्रति श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी रचनाओं एवं ललित कविताओं की पंक्तियों को उद्धृत करके मैंने अपने निबन्धों की भावना को बलवती बनाने का प्रयास किया है।

आशा है मेरा यह लघु प्रयत्न लोक-साहित्य-प्रेमियों को प्रिय लगेगा।

विजया दशमी
१९५७ }

श्रीचन्द्र जैन

अनुक्रमणिका

मोरी धरती मैया

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्ये पर्जन्यपत्नयै नमोऽस्तु वर्ष मेदसे ।। (पृथ्वी सूक्तम् ४२)

पैदा होते जिस वसुधा पर धान और जौ आदिक अन्न ।
जिस वसुधा से हुए सभी ये पंचवर्ण मानव उत्पन्न ।।
वर्षा ही मेदा है जिसको, जिससे पड़ा मेदिनी नाम ।
उस पर्जन्य पालिता पृथ्वी को है मेरा नित्य प्रणाम ।।

(नया पथ-लोक सा. वि.)

धरती माता की सत्ता चिरन्तन है। अखिल विश्व की सृष्टि का आधार धरती मैया है। चराचर की स्थिति धरती माता की दया पर अवलंबित है। पर्वत, पेड़, सागर, नदियाँ, सरोवर, महल, मकान आदि सब धरती माता की गोद में ही खेलते और कूदते हैं। मानव जाति के जीवन का आधार अन्न पृथ्वी पर ही उत्पन्न होता है। धन-संपत्ति का उपार्जन विश्वम्भरा भूमि पर ही समस्त संसार कर रहा है। वास्तव में पृथ्वी स्वयं सम्पत्ति रूपा है। हीरा, पन्ना, मोती, सोना, चाँदी, लोहा आदि का जन्म धरती मैया की कोख से हुआ है। धरती माता के सहारे से ही एक बीज अनेक फलों में परिवर्तित होकर संसार के जीवन को सुखमय बनाता है। छः ऋतुओं का जन्म, दिन-रात की विशेषता, राज्यों का संकोच और विस्तार एवं शान्ति और युद्ध की भावना इस जगत-जननी धरती के ही लिये है। सूर्य और चन्द्रमा, देव और असुर, नर एवं पशु-पक्षी और वृक्ष सब धरती माता की ही पूजा करके अपने आपको सुखी बनाते रहते हैं। जीवन की गति और आकर्षण पृथ्वी पर ही आधारित हैं। यज्ञों की पूर्णता और अर्चना की

सफलता इस वसुन्धरा की कृपा से ही ज्ञात होती है। ईश्वर की साकारता पृथ्वी पर ही मानव देखता रहता है। इस पवित्र भूमि पर पुण्यतीर्थ और पावन गंगा हैं। महर्षियों ने शान्तिदायिनी, गंधवती, सुखप्रदा, बीजगर्भा, सजला, उपजाऊ, आदि अनेक नामों से पृथ्वी माता की वन्दना की है। धन तथा बल की प्राप्ति के लिए विनय करते हुए महापुरुषों ने इस ऐश्वर्य-शक्ति-सम्पूर्ण धरती माता को ही विश्व का भरण करने वाली माना है :—

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणो नो दधातु ॥
(पृथ्वी सूक्तम् मंत्र ६)

विश्व का भरण करने वाली, धन को धारण करने वाली गृह-रूपा, सुवर्ण की खान रूप वक्षःस्थल वाली, समस्त संसार को आश्रय देने वाली, सबमें प्रविष्ट अग्नि को धारण करने वाली तथा सुरेन्द्र के द्वारा सिक्त यह धरिणी हमें वैभव और बल प्रदान करे।

भगवान भी अपनी बाल लीला को दिखाने लिए स्वर्ग को छोड़कर इसी धरती मैया की गोद में आकर बैठते हैं। किसलय-सी कोमल हृदयवाली धरती शत्रुओं के विनाश के लिए वज्र के समान कठोर बन जाती है। यही धरती मैया कभी लक्ष्मी बनती है तो कभी पार्वतीजी का रूप धारण कर लेती है। यही भूमि कभी सरस्वती बनकर अज्ञान रूपी अंधकार का हरण करती है तो कभी यही धरित्री दुर्गा के रूप में अवतार लेकर दानवों का संहार करने लगती है। ऋद्धि, सिद्धि, महिमा, गरिमा, आदि नाम इस विश्व-रूपा धरती मैया के ही हैं।

मैया धरती के अनेक नाम हैं, जो उसके गुण-विशेष के परिचायक हैं। अमरकोष के अनुसार भूमि के कुछ नाम निम्नस्थ हैं :—भूः, भूमि, अचला, अनन्ता, रसा, विश्वम्भरा, स्थिरा, धरा, धरित्री, धरणिः, क्षोणिः, ज्या, काश्यपी, क्षितिः, सर्वसहा, वसुमती, वसुधा, उर्वी, वसुंधरा, गोत्रा, कुः, पृथिवी, पृथ्वी, क्ष्मा, अवनिः, मेदिनी, मही, विपुला, गह्वरी, धात्री, गौः, इला, कुम्भिनी, क्षमा, भूत-

धात्री, रत्नगर्भा, जगती, सागराम्बरा, मृत्, मृत्तिका, मृत्सा, मृत्स्ना, उर्वरा, उषः, क्षार-मृत्तिका आदि—[१]

यह सम्पूर्ण संसार पृथ्वी की छाया के अन्तर्गत है। धरती माता का स्वरूप विराट् है। उसकी प्रतिमा अत्यन्त विशाल है। वह अनन्त है। उसके गुणों का वर्णन करना असम्भव है। प्रत्येक प्राणी धरती माता का पुत्र है; और वह स्वयं को अपनी जननी-भूमि की सेवा में अर्पित करके भाग्यशाली मानता है। एक समय हमारे ऋषियों ने सुमधुर स्वर में धरती माता की विशालता की प्रशस्ति-स्तुति में अपने को उसका पुत्र बताते हुए पालन एवं मनोरथ-पूर्ति के लिए उससे प्रार्थना की थी :—

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं, यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः तासु नो धेह्यभिः नः पवस्य माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उनः पिपर्तु ॥

(पृथ्वी सूक्तम् मंत्रः १२)

जो मध्य भाग, जो नाभि देश हैं तेरे।
तुझसे प्रकटित जो पोषक तत्व घनेरे॥
रख वही, उन्हीं में मुझे, मोद उर भरदे।
निज पुत्र अपावन को अति पावन करदे॥
हम सुत वसुधा के, वह हम सबकी माता।
जीवन दाता पर्जन्य पिता हो, त्राता॥

(संकलित)

---

१. भूर्भूमिरचलानन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा।
धरा धरित्री धरणिः क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः।
सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा।
गोत्रा कुः पृथिवि पृथ्वी क्ष्मा वनिर्मेदिनी मही।
विपुला गह्वरी धात्री गौरिला कुम्भिनी क्षमा।
भूतधात्री रत्नगर्भा जगती सागराम्बरा।
मृन्मृत्तिका प्रशस्ता तु मृत्सा मृत्स्ना च मृत्तिका।
उर्वरा सर्वसस्याढ्या स्यादूषः क्षार मृत्तिका। (अमरकोषः द्वितीय काण्डम्)

छतरपुर (बुन्देलखंड) के प्रसिद्ध लोक-कवि श्री गंगाधर व्यास के सैरे विशेष प्रसिद्ध हैं। आपने निम्नस्थ पंक्तियों में धरती मैया के रूप और उसकी विशाल काया की ओर संकेत करते हुए प्राचीन नाप का उल्लेख किया है :—

दोहा—गंधवत्य पृथुवत्य है, जानत सकल जहान।
दो प्रकार के भेद हैं, नित्य अनित्य बखान ।।

सैंर—जो नित्य कही पृथ्वी, सो सूक्ष्म मानिए।
जा अंतर में भानु गए, रूप जानिए ।।
पृथ्वी अनित्य भेद, तीन तात तानिए।
वैदिक प्रमान पृथ्वी कौ, छान छानिए ।।
पर्वत सो मृत्तका, औ पाखान नानिए।
जे हैं सरीर पृथ्वी के, भेद आनिए ।।
हैं इन्द्री चक्षु नासा के अग्र ठानिए।
वैदिक प्रमान पृथ्वी कौ, छान छानिए ।।
नख रेख करैं चौबिस, अंगुल बखानिए।
अंगुल समूह चारौं मुट्ठक प्रमानिए ।।
पट् मुट्ठक कौ हस्त होत, नाप भानिए।
वैदिक प्रमान पृथ्वी कौ, छान छानिए ।।
कर चार धनुस जाहिर, जा बात रानिए।
दो सहस धनुस करकैं, इक कोस गानिए ।।
है चार कोस जोजन, जाहिर जहानिए।
वैदिक प्रमान पृथ्वी कौ, छान छानिए ।।
दस जोजन कौ नाप एक देस भानिए।
दस देस तुरत तामैं, मंडिल पैचानिए ।।
दस मंडल कौ एक खंड, यों पुरानिए।
वैदिक प्रमान पृथ्वी कौ, छान छानिए ।।
नव खंड समझ धरती, रंग पीत धानिए।
हैं सार काज भूमी, विस्तार मानिए ।।

गनपत मनाय गौरी, शंकर प्रवानिए।
वैदिक प्रमान पृथ्वी कीं, छान छानिए।।

शस्य-श्यामला पृथ्वी का सुन्दर स्वरूप हमें ग्रामों में देखने को मिलता है। हमारी भारतमाता धरित्री है, जो ग्रामवासिनी है, जिसके आँगन में सदैव रत्नदीपों का प्रकाश अठखेलियाँ करता है; गंगा-यमुना जिसके पैरों को पखारती हैं और श्याम जलधर जिसके रेशमी केशों को धोते हैं और पवन उन्हें सुखाता रहता है; कमल जिस धरती मैया के पैर हैं और सागर जिसकी मेखला (करधनी) है उस धरती माता का सुपुत्र किसान ही है। उसकी सेवा ही सच्ची सेवा है। उसकी अर्चना में भक्ति का पूर्ण प्रवाह है।

अषाढ़ के महीने में जब आकाश मेघों से घिर जाता है और जङ्गल हरा-भरा दिखाई देने लगता है, तब किसान का मन उमंगों से भर जाता है। उसके कंठ से अनायास ही गीत निकलने लगते हैं और वह गा उठता है :—

धरती माता तैंने काजर दए,
सेंदरन भर लई माँग।
पहर हरि अला ठाँड़ी भइ,
तैंने मोह लयो जगत संसार।।

पृथ्वी के दो हाथों की विशेषता है। एक में प्रलय गूंजता है और दूसरे में सृष्टि उमंगें भरती है। आँधी, प्रलय की भयंकर मूर्ति है और वर्षा सृष्टि का प्रतीक है। इस गहन भाव को एक अशिक्षित किसान हल चलाता हुआ अपनी साधारण भाषा में कितने भोलेपन से प्रकट कर रहा है :—

धरती मात तो में दो भए,
इक आँधी इक मेय[१]।
मेय के बरसे साखा भई,
जा में लिपट लगे संसार।।

जगज्जननी भगवती सीता पृथिवी की ही प्रतिरूप है। गोस्वामी तुलसीदासजी

१ मेघ।

का माता सीता विषयक श्लोक धरती मैया के स्तवन में पूर्णरूपेण घटित होता है :—

'उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं राम वल्लभाम् ॥
(बालकांड रा. च मा.)

उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों की हरनेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों की करने वाली श्री रामचन्द्रजी की प्रियतमा श्री सीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

एक संस्कृति के पश्चात् दूसरी संस्कृति जन्म लेती है । वंशों का विनाश और पुनर्जीवन होता ही रहता है । सृष्टि में परिवर्त्तन के बीज चिरकाल से विद्यमान हैं, लेकिन धरती मैया अविनश्वर है । रूप में परिवर्त्तन होता रहता है परन्तु मूल रूप में पृथ्वी का अस्तित्व चिरन्तन है[१] । धरती माता का हृदय बड़ा ही कोमल है । दीन की करुण पुकार से मैया विकल हो उठती है । भूले भटके को वह सदैव सच्चा मार्ग बताती है और विह्वल को सान्त्वना देती है[२] । धरती माता शरणदायिनी है । इसकी गोदी में सबको स्थान है । नीच-ऊँच का भेद यहाँ है ही नहीं । धरित्री सर्वोत्तम आश्रय है[३] । भगवान का दर्शन उसे ही प्राप्त होता है, जो धरती माता को प्रसन्न कर लेता है[४] ।

सामयिक काव्य अस्थायी होता है । युग से प्रभावित साहित्य का रूप कुछ समय के ही लिए आकर्षक रहता है, लेकिन धरती माता का काव्य नित्य नूतन है[५]। वसुमती की प्रशस्ति ईश्वर की वन्दना है । जो धरती मैया से प्रेम नहीं करता वह सच्चा परमेश्वर-भक्त नहीं बन सकता । धरा की वन्दना विश्व-बन्धुत्व की कामना है । जिस प्रकार भगवान के अनन्त रूप हैं उसी प्रकार अचला के भी

---

1. One generation passeth away and another generation cometh but the Earth abideth for ever. (Old Test.)
2. Speak to the Earth and it shall teach thee. (Old Test.)
3. Earth is the best shelter.
4. He findeth God, who finds the Earth, He made.
5. The Poetry of Earth is never dead. (Keats.)

अनन्त नाम रूप हैं और इसीलिए उसे अनन्ता कहा गया है। धरती की ही रज में लोट कर मनुष्य परमात्मा बनता है और परमात्मा भी भू से अपनत्व जोड़कर भूदेव कहलाता है।

लहलहाती हुई फसल को देखकर किसान मस्ती से झूम उठता है। वह धरती माता का अहसान मानता हुआ गद्-गद् कण्ठ से गुनगुनाता है :—

धरती मैया तैंने सुख दए री,
रामा ! करदओ सबखों निहाल।
सबखों रोटी तैंने दई रे,
सबकी सुनलई टेर। धरती मैया हो।
तेरे कजरा कारे बदरवा,
फुलवा रे लाल चुनरिया।
धरती मैया जग की मैंया,
देवन की रखवैया। धरती मैया हो।

कृषक धरती का सच्चा लाल है। कर्मठ किसान का प्रेम इस धरिणी से गहरा है। चातक की जो साधना मेघ के प्रति है, वही साधना, वही लगन किसान की धरती माता के प्रति है। इस में वह अपने आपको मिटा देता है, फिर भी वह धरती मैया की रट लगाए ही रहता है। कभी धरती माता अपने पुत्र किसान को भिखारी बनाती है तो कभी कुबेर; लेकिन किसान दोनों ही रूप में एक ही लगन के साथ धरती का गुण गाता है और अपने आपको उसी की ही आराधना में स्वाहा कर देता है—सरसों के पीले फूलों से वसुन्धरा पीतवर्णा बन चुकी है। सुरभित पवन के झोकों से किसान का शरीर पुलकित हो उठा है। वह खेत की मेंड़ पर खड़ा हुआ गाता है :—

मैं धरती कौ लाल,
धरम की मैया धरती।
मैं धरती कौ भाल,
करम की मैया धरती।

\+ + +

कीनें मोरे अँसुआ पोंछे,
कीनें मोरे दुखवा टारे।
इन सूखे हाड़न पै कीनें,
रो रो करके अँसुआ डारे।

\+ + +

धरती मैया तैंनें मोरे,
अँसुआ पोंछे—दुखवा टारे।
मोरे इन सूखे हाड़न पै,
रो रो तैंनें अँसुवा डारे।
धरती मैया हो।

माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होती है[1]। चिड़िया भी अपने वतन के लिए रोती रहती है।

रीवा के कवि हाफिज महमूद की धरती मैया की वन्दना में लिखी हुई निम्नस्थ कविता यहाँ विशेष प्रचलित है :—

धरती माता तुम धन्न धन्न।
देत्या है सबका बस्त्र अन्न॥
बरखा रितमा पानी बरसे।
धरती मा हरियारी हर से॥
गरमी भागै डरिकै तड़ से।
निकरै किसान अपने घर से॥
जोतै बोवै तब फेर अन्न।
धरती माता तुम धन्न धन्न।

कउनउ मा कोदौं जोन्हरी औ,
अरहर का बीज बोवाय दिहिन।
कउनउ मा छिटुआ धान छींट,
कउनउ मा लेव लगाय लिहिन।

---

१ जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

कउनउ मा रोपा केर तार,
कउनउ मा खाद डराय दिहिन ।
कउनउ भरुआ मा पानी भरि,
आगेउ का तार लगाय लिहिन ।
तब सोमैं गोड़ पसार गन्न,
धरती माता तुम धन्न-धन्न ।
यक दाना मा सत्तर दाना,
दइके तुम सब का कष्ट हरया ।
ठाकुर बाम्हन पौनी परजा,
नौवा बारिउ के पेट भरया ।
बेउहर बावा के कुठिलन मा,
बेउहरगित के फेर अन्न भरया ।
कौलौ गमार के टटिहर घर के,
कोनमन मा सब अन्न धरया ।
हाफिज भा देख सुन के प्रसन्न,
धरती माता तुम धन्न धन्न ।

धरती माता तुम धन्य हो, तुम सबको अन्न-वस्त्र देती हो। वर्षा ऋतु में पानी बरसता है। धरती पर हरियाली छा जाती है। गरमी जल्दी से भग जाती है। किसान घर से निकलता है। खेत को जोतने और अन्न को बोने के लिए। धरती माता तुम धन्य हो ।

किसी में कोदों, ज्वार और अरहर का बीज बोदिया। किसी में छिट्ठुवा धान को बोदिया। किसी में लेवा लगा दिया। किसी में रोपा लगाने का उपाय कर लिया। किसी में खाद डाल दिया। किसी भरुआ में पानी भरकर आगे का उपाय सोचा। तब गोड़ पसार कर किसान गहरी नींद सोता है। धरती माता तुम धन्य हो।

हे धरती माता एक दाने में सत्तर दाने देकर तुम सबका कष्ट हरती हो। ठाकुर, ब्राह्मण, गरीब प्रजा, नाई और बारी सब का पेट भरती हो। महाजन

(ऋण दाता) के कुठिला को अन्न से भरती हो। कौल गँवार के टटिया लगे हुए घर को भी अन्न से भरती हो। हाफिज यह देखकर प्रसन्न हुआ, धरती माता तुम धन्य हो।

धरती का पुत्र मानव है। इसीलिए उसने अपने जीवन के प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए सर्व प्रथम अपनी माता-धरती को स्मरण किया है। विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले तिलकोत्सव के बघेली गीत में विवाह-यज्ञ की सफलता के लिए देवी-देवताओं से प्रार्थना की गई है। इसमें सबसे पहले धरती का गुण-गान हुआ है :—

"गायेउँ धरती रे गायेउँ माता सब देउतन केर नाम।
तोहरें सरन बुढ़ि मइया माई, जग रोपेउं, जग्ग सफल होइ जाइ।।
तोहरें सरन हनुमान सोमी, मैं जग रोपेउँ, जग्ग सफल होइ जाइ।

धरती माता का गुण-गान करता हूँ, और सब देवताओं के नामों को भी लेता हूँ। बूढ़ी माता मैं तेरी शरण में हूँ। मैंने यज्ञ प्रारंभ किया है। उसे सफल बनाओ। हनुमान स्वामी मैं तेरी शरण में आया हूँ मैंने यज्ञ (विवाह) प्रारम्भ किया है उसे सफल बनाओ।

इसी प्रकार मातृ-पूजा में सब देवी-देवताओं को निमंत्रित किया जाता है। धरती माता को सबसे पहले निमंत्रण देकर पृथ्वी-पुत्र किसान अपनी मातृ-स्नेह-गरिमा का परिचय देता है।

"पाँच मोहर कइ सुपरिया मँगाइन,
नेउतेन कुल परिवार।
पहले नेउतेन धरती माता,
दुसरे अजुधिया के राम।
तिनरा नेउता दिहँउ उहै जग जननी,
मोर जज्ञ पूरन होय।"

पाँच मुहरों की सुपारी मँगाई और कुल-परिवार को न्यौता दिया। पहले धरती माता को निमन्त्रण दिया। दूसरा अयोध्या के राम के पास न्यौता भेजा।

तीसरा न्यौता उस जगत माता के पास भेजा ! मेरा यज्ञ सफलतापूर्वक समाप्त हो।

पृथ्वी को वसुंधरा कहकर उसकी वैभवशालिता का ऋषियों ने पूर्ण परिचय दिया है। रत्नगर्भा नाम 'भू' का स्वयंसिद्ध है।

तू वसुंधरा तू धात्री है।
तू महा मेदिनी माया है।।
तू क्षमा उर्वरा धरिणी है।
तू पृथ्वी सबकी छाया है।।

धरती माता सोने का दान करती रहती है। कर्मठ मनुष्य इसे ग्रहण कर अपने दारिद्रय को दूर कर सकता है :—

धरती उगल रही है सोना।
मानव भरले कर का दौना।।
कल जानें क्या-क्या है होना।
धरती उगल रही है सोना।।

हुस्न (सौन्दर्य) का कोष भी तो धरती के नीचे गड़ा हुआ है। उर्दू के महाकवि 'दर्द' ने इस दफ़ीने को अच्छी तरह से देखा है।

"सूरतें क्या क्या मिली हैं खाक में।
है दफ़ीना[1] हुस्न[2] का ज़ेरे[3]-जमीं।।"

सृष्टि का प्रारम्भ और अन्त धरती से ही सम्बन्धित है। सम्पूर्ण संसार का जन्म पृथ्वी से हुआ है और अवधि की समाप्ति पर यह अखिल विश्व पृथ्वी में ही लीन हो जाता है—एक साधु ने पुकार कर कहा था—

धरती तन है।
धरती मन है।
धरती ही मेरा जीवन है।

यह दृश्यमान जगत धरती का ही पुतला है।

---

१ गड़ा हुआ धन। २ सौन्दर्य। ३ जमीन के नीचे।

खाक का पुतला बना है।
खाक की तस्वीर है ॥
खाक में मिल जायेगा।
बस खाक दामनगीर है ॥

एक क्वांरी ब्राह्मण कन्या ने कृष्ण के पूछने पर बताया था कि उसके जीवन की साथिन एक गज धरती है। कुमारी के इस उत्तर में गहरी मर्म वेदना छिपी है और साथ ही धरती मैया की उदारता ध्वनित हो रही है :—

"ब्राह्मण की लड़की अखण्ड-क्वारी, हो राम।
कोई सींचै धर्म कीं क्वारी, हो राम ॥
सींच साँच कै घर को आयी, हो राम।
कोई मिल गए कृष्ण मुरारी हो राम ॥
मैं तुझे पूछूं ब्राह्मण की बेटी, हो राम।
कौन तेरे जीवड़े का साथी, हो राम ॥
एक गज धरती, सबा जग कपड़ा, हो राम।
वही मेरे जीवड़े का साथी हो राम[1] ॥

इन्द्र और धरती का संबन्ध सृष्टि के आदि से है। धरती क उष्णता को देखकर इन्द्र विकल हो जाता है और अपने अनुचर मेघों को भेजकर जल-सिंचन करवाता है एवं धरती की शुष्कता और थकावट को दूर करता है। श्यामल घन-घटाओं को देखकर धरती मैया मुदित हो उठती है और शस्य श्यामला धरित्री की हरीतिमा से सुरपति का हृदय खुशी से भर जाता है। इसी पारस्परिक आनन्द का उल्लेख एक आदिवासी युवक ने अपने करमा गीत में प्रकट किया है :—

"दल बादल घहराय रे।
वह दल बादल घहराय रे ॥
धरती छोड़ै चिहार रे।
वहै धरती छोड़ै चिहार रे॥
पांच पेड़ आमा लगवाय रे।
वहै पांच पेड़ आमा लगवाय रे ॥"

---

१ धूल-धूसरित मणियाँ—पृष्ठ ६५।

भावार्थ—बादलों का समूह आकाश में घुमड़ रहा है।
वह बादलों का समूह घुमड़ रहा है।
धरती चिल्ला रही है, वह धरती पुकार रही है।
पांच आंम के पेड़ लगवाले।
वे पांच आम के पेड़ लगवाले।

बैगा (आदिवासियों की एक उपजाति) धरती की पूजा करता है। कष्ट में पड़कर वह धरती पर अपना सिर रखता है और अपनी व्यथा को सुनाकर शान्ति पाता है। हल-बखर चलाकर वह अपनी धरती मैया को दुःख नहीं देता। विना जुती हुई धरती पर वर्षा के पूर्व बीजों को छिड़क कर वह अपनी कृषि की पूर्ति मान लेता है।

पुण्य-भूमि अमरकंटक के जङ्गल में एक दिन करमा नृत्य नाचते हुए कुछ बैगा युवकों ने बड़ी भावुकता के साथ ठुमुक ठुमुक कर गाया था :—

"धरती माता—अपने मा हमका मिलाय लइहागा।
आम लगाये, अमली लगाये,
और लगाले जाम।
काल-परों दिन मरजावें,
कउन बनाही काम ?
धरती माता—अपने मा हमका मिलाय लइहागा।

भावार्थ—धरती माता ! हमको अपने में मिलालो। आम, इमली और जामुन के पेड़ लगाये। कल-परसों मर जावेंगे, फिर ये क्या काम आवेंगे। धरती माता हमको अपने में मिलालो।

धरती मैया के अनेक रूप हैं। किसी में वह कोमल है तो किसी में कठोर। हमारे ऋषियों ने चार प्रकार वाली पृथ्वी को अनेक बार प्रणाम किया है :—

"शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः सन्धृता धृता। तस्यै हिरण्यवक्ष-से पृथिव्या अकरं नमः"

(पृथ्वी सूक्तम् २६)

अन्नादि जीवन-साधनों को उत्पन्न करने वाली सन्धृता, एवं जीवनोपयोगी वस्तुओं को प्रदान करने वाली धृता, भूमि, पहाड़ी, दूमट, ककरीली, बलुई भेद से चार प्रकार की है। इस नाना रूपा सुवर्ण की खानरूप वक्षःस्थल वाली पृथ्वी के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

(अनुवादक आचार्य प० गोपालचंद्र मिश्र)

हमारे ग्राम-निवासियों की आँखें धरती मैया को सदा से विभिन्न आकृतियों में देखती आ रही हैं। इस कथन की पुष्टि हमें गाँवों में प्रचलित पहेलियों से होती है। सचमुच हमें इन अपने गाँव के भाइयों की बुद्धि पर गर्व करना चाहिए। सामान्य वस्तुओं को भी उनकी मेधा बड़ी गहराई के साथ परखती और देखती है। पृथ्वी के अनन्ता नाम को सिद्ध करने वाली यह पहेली कितनी सुन्दर है।

कोऊ न पावै जाकौ अन्त।
मोय बताओ कोहै कन्त ?

(पृथ्वी)

कहा जाता है कि धरती माता शेषनाग के फनों पर स्थित है। जब शेषजी के फन हिलते हैं तभी भूकम्प होता है। इस विश्वास पर आधारित यह पहेली है :—

शेष नाग पै जो बैठी है,
पसर पसर कैं मैया।
जाके हिलतन जग रोवत है,
कहकं हा ! हा ! दैया ॥

(उत्तर—धरती)

पुराणों में कथा है कि धरती माता एक समय जल-मग्न थी। भगवान ने वराह का अवतार धारण करके उसका उद्धार किया और पाताल से अपने दाँत पर रखकर बाहर लाए। इसी पौराणिक तथ्य का उल्लेख निम्नस्थ प्रहेलिका में है :—

पैले[1] हती[2] पाताल कुंड में,
भूमी लहर लहर पर।
फिर चढ़कै दन्ता[3] पै आई,
उन्ना[4] पहन पहन कर॥

(उत्तर—धरती)

वसुंधरा नाम से प्रसिद्ध धरती पर बनी हुई यह बुंदेली कहावत रचयिता की प्रबुद्ध बुद्धि की परिचायक है :—

जी में[5] उपजें हीरा मोती,
सोना चाँदी पन्ना।
जी को[6] चलना कोउ न जानें,
को है ऐसी धन्ना[7]॥

(धरती)

धरती की विशालता को लेकर मालवा में प्रचलित एक पहेली को सुनिए :—

जाजम डाली चन्दन चोक में,
ओ मारूजी म्हाने समेटी नी जाय।
हटीला डावड़ा म्हारी प्याली को अरथ बतावो।

(धरती)

इस प्रकार हमारी धरती मैया की कहानी अनादि काल से विविध रूपों में वर्णित है।

इसके उपकारों से विश्व आभारी है। पञ्च तत्त्वों की जन्मधात्री धरती हमारी निधि है; हमारे जीवन की साँसें हैं, और हमारे युग-युगों की प्रेरणा है। धरती मैया की आराधना में ही सब सुख हैं। धरती मैया की सुखद गोद में रहने वाले प्रत्येक प्राणी को प्रातः काल पृथ्वी सूक्त के निम्नस्थ मंत्र का जाप करके अपने दैनिक जीवन का प्रारम्भ करना चाहिए :—

---

१ पहले। २ थी। ३ दांत। ४ कपड़ा। ५ जिसमें। ६ जिसका। ७ धन्य (प्रशंसा योग्य)।

"यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो, यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सो नो भूमिः प्रगुदन्तां सपत्नानसपत्नं मा पृथ्वी कृणोतु।"

हिन्दी पद्यानुवाद—

विजय मुदित नर नृत्य गानरत, जहाँ युद्ध करते भर जोश।
हाहाकार कहीं जिस पर है, कहीं दिव्य दुन्दुभि का घोष॥
भूमि हमारे शत्रु वृन्द को, वह अविलम्ब भगादे दूर।
वैरि विहीन बनादे हमको, हों हम सब सुख से भरपूर॥

(संकलित)

पृथ्वी की गोद से जिसने जन्म लिया है उसी से हमारा बन्धुत्व का नाता है। पर्वत और अरण्य-समतल भूमियाँ और समुद्र, निरन्तर बहने वाली जल-धाराएँ और जलपूर्ण स्रोत नाना प्रकार की वीर्यवती ओषधियाँ, वृक्ष और वनस्पति, पृथ्वी के गर्भ संचित स्वर्ण और मणिरत्न, शिलाएँ और भाँति-भाँति की मृत्तिकाएँ, सुनसान जंगलों में मंगल करने वाले सिंह, व्याघ्र आदि पशु एवं आकाश में गरुड़ की शक्ति से झपटने वाले नभचर पक्षी ये सब मातृ-भूमि के पुत्र हैं। मातृ-भूमि के परिचय में इन सबका परिचय अंतर्हित है। राष्ट्रीय नवोदय के समय इन सबके साथ हमें नूतन परिचय प्राप्त करना चाहिए। .... ।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।

चतुर्भुजां शुक्लवर्णां कूर्मपृष्ठोपरिस्थिताम्।
शङ्ख पद्मधरां चक्र शूल हस्तां धरां भजे॥

(स्मार्त्त याज्ञिका)

अन्नं ब्रह्म

अन्नं ब्रह्म रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।
एवं ज्ञात्वा तु यो भुङ्क्ते, अन्न दोषैर्ना लिप्यते।

(आह्निक सूत्रावली)

अन्न ब्रह्म है, उसका रस विष्णु है और उसका खानेवाला महेश्वर है। ऐसा जानकर जो भोजन करता है वह अन्न-दोष से दूर रहता है।

संसार की जीवन-शक्ति अन्न है। विश्व के सारे काम अन्न की प्राप्ति के लिए हैं। स्वयं भगवान भी अन्न के इच्छुक हैं। इल्म, इंसान और ईमान की रक्षा अन्न से ही होती है। अन्न न मिलने पर मनुष्य सब पाप करने लगता है और वह दानव बनकर धर्म, देश और समाज का द्रोही बन जाता है। राष्ट्र की उन्नति अन्न पर ही अवलंबित है। पृथ्वी की पूजा अन्न-प्राप्ति के ही लिए होती है। भजन-पूजन, यज्ञ-कथा आदि सब का अर्थ अन्न की इच्छा है। अन्न को पाने के ही लिए मनुष्य आकाश में उड़ता है, सागर में डुबकियाँ लगाता है, जमीन खोदता है, पत्थर तोड़ता है, नाचता और गाता है। दो रोटी के लिये ही तो मनुष्य ईमान तक बेच डालता है, और चाकर के रूप में अपने मालिक के सामने दीन बनकर बन्दर की भाँति नाचता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार के सम्पूर्ण कार्य अन्न-प्राप्ति के ही लिए हैं। एक संस्कृत विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि दुनिया के सब काम एक कुरी चावल के लिए हैं।[१] सत्य तो यह है कि प्राणि मात्र की उत्पत्ति अन्न से होती है। अन्न पर्जन्य से उत्पन्न होता है और पर्जन्य यज्ञ से जन्म पाता है और यज्ञ की उत्पत्ति कर्म से होती है।[२]

---

(१) सर्वारंभाः तण्डुलप्रस्थ मूलाः।

(२) अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः।
श्री मद्भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक १४

अन्न-देवता की पूजा अनादि काल से हो रही है। अन्न-परमेश्वर के क्रुद्ध होने पर संसार नष्ट हो जाता है और पृथ्वी रसातल में जाकर अपना अस्तित्व मिटा देती है। इसीलिए सब धर्मों में अन्न-देवता की उपासना करने का आदेश है। ये चलती-फिरती मूर्तियाँ अन्न से ही जीवित हैं।[1] प्रजा की वृद्धि और उसका जीवन अन्न से ही है।[2] संसार के जड़-चेतन का निवास अन्न में ही है।[3] जीवन में अन्न की उपयोगिता महान है। किसी लोक-कवि का कथन ठीक है कि :—

अन्न से जहान।
अन्न से किसान।
अन्न से इन्सान।
अन्न से ईमान।

भूख से पीड़ित मनुष्य सब पाप कर बैठता है। संस्कृत की लोकोक्ति में कहा गया है कि बुभुक्षितः किं न करोति पापम्? (भूखा कौन सा पाप नहीं करता?) एक महाकवि ने भी भूख से विकल होकर एक बार कहा था—

भूखे भजन न होंय गुपाला।
लैलो अपनी कंठी माला।

दो रोटी के लिए मनुष्य अनेक रूपों को धारण करता है और सबके सामने हाथ फैलाता है। पेट भरने के लिए वह अपनी प्यारी जन्मभूमि को छोड़ता है और परदेश जाकर दर-दर ठोकरें खाता है :—

दो रोटी के लानें भैया।
हमनें छोड़ो देश।
हाथ पसारें फिरें जगत में।
बदलें अपनो वेश॥

(१) या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत्। (ऐ० उ० ३।२)

(२) अन्नाद्वै प्रजा प्रजायन्ते, अथो अन्नेन जीवति। (तै० उ० २।२।१)

(३) अन्नेहीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि। (बृ० उ० ५।१२।१)

मन में उमंगें तभी उठती हैं जब पेट भरा होता है। किसान विरहा तभी गाता है जब उसकी भूख मिट जाती है। आँखें सुन्दरता पर तभी रीझती हैं जब उनका उदर रोटियों से भरा हो।

भूख से तड़पते हुए एक अहीर ने गाया था—

भुखिया के मारे बिरहा बिसरिगा भूलि गई कजरी कबीर।
देखिक गोरीक मोहिनी सुरतिया उठै न करेजवा में पीर॥

अन्न को खाकर ही प्राणी बढ़ता है।[१]

अन्न की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। प्राण और व्रतादि का आधार अन्न है।[२]

शरीर की कान्ति अन्न से ही है।[३]
अन्न का रस ही प्राण है।[४]
सबका उत्पत्ति स्थान अन्न है।[५]
प्राणियों की उत्पत्ति अन्न से हो है।[६]
अन्न ही मानव को कर्त्तव्यशील बनाता है।[७]
अन्न ही माता-पिता है।[८]
सबसे ऊँचा देवता अन्न ही है।[९]

---

(१) अन्नाद्भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्धन्ते। (तै० उ० २२।१)
(२) अन्नं न निंद्यात् व्रतं प्राणो वा अन्नम्। (तै० उ० ३।७।१)
(३) परं वा एतदात्मनो रूपं यदन्नम्। (मै० उ० ६।११)
(४) प्राणो वा अन्नस्य रसः। (मै० उ० ६।१३)
(५) अन्नं वा अस्य सर्वस्य योनिः। (मै० उ० ६।१४)
(६) अन्नाद्भूतानामुत्पत्तिः। (मै० उ० ६।३७)
(७) अन्न है करैया, अन्न है धरैया।
(८) अन्न है माता पिता, अन्न रखवैया।
अन्न बिना रोउत फिरैं, हाय हाय धैया।
(९) अन्न देवता सबसे ऊंचौ, सबकौं जीवन राखत।
ब्रह्मा विष्णु महेश राम सब, वाकौं पल पल चाहत।

अन्न परमेश्वर है ।[१]

शान, मान और ईमान की रक्षा अन्न से ही होती है ।[२]

अन्न से ही सुख की नींद मिलती है ।[३]

अन्न ही ब्रह्मा है ।[४] और अन्न ही ब्रह्म है ।[५] अन्न-जल के दान की समता अन्य दान नहीं कर सकते हैं ।[६]

अन्न देवता के कुपित होने पर जब अकाल पड़ता है तब पृथ्वी तथा प्राणी सब हा-हाकार करने लगते हैं । रोटी की पुकार से आकाश गूँज उठता है और दीन-हीन एवं भूखे मानव के करुण क्रन्दन से पहाड़ भी पसीजने लगता है । भुखमरी से व्याकुल होकर पिता अपने हृदय के टुकड़े बच्चे को भी बेचने के लिए विवश हो जाता है ।[७] भूख से थका हुआ आदमी जूठे पत्ते भी चाटता है । पेट की आग बड़ी भयंकर होती है । सर्पिणी भूख को शान्त करने के लिए अपने पेट से निकले हुए बच्चों को भी निगल जाती है । कुतिया पेट की धधकती

---

(१) परमेश्वर है अन्न,
बहन भैया महतारी ।
दया धर्म की आन,
अन्न सबको सुखकारी ।

(२) निन्दा कबहुं न करो, अन्न को, जो है प्राण रखैया ।
शान, मान, ईमान, धरम को, जो है एक बचैया ॥

(३) जब पेट में परीं दो, तब मनुआँ गयो सो ।

(४) अन्नं वै प्रजापतिः । (महानारायण उपनिषद २३।१)

(५) अन्नं ब्रह्म । (तै० उ० ३।२।१)

(६) नान्नोदकं समं दानं, न तिथिद्वदिशी समा ।
न गायत्र्याः परो मंत्रो, मातुर्दैवतं परम् ।

(७) बाप बेटा बेचता है,
भूख से बेहाल होकर ।
राष्ट्र सारा देखता है,
धर्म धीरज प्राण खोकर ।
बाप बेटा बेचता है ।
हो रही अनरीति बर्बर । (श्री केदारनाथ अग्रवाल)

हुई अग्नि को बुझाने के लिए अपने प्यारे बेटों को भी खा जाती है। भगवान! कोई भूख से दुखी न हो, अन्यथा उसकी बड़ी बुरी दशा हो जाती है। बुन्देलखण्ड के लोक-कवि ईसुरी ने अकाल के चित्र को अपनी गीली आँखों के सहारे कई बार खींचा था—

आसौं हौल सबई के भूले,
कई एक काँखें कूले।
कच्चे बेर बचे हैं नइयाँ
कंगीरन[1] ने रूले[2]।
मिलें न गेहूँ मिसी बाजरा,
परचन[3] नइयाँ चूले।
मारे मारे फिरें 'ईसुरी'
बड़े बड़े दिन दूले।

जंगलों में निवास करने वाले आदिवासी भी अन्न की महिमा को समझते हैं। तरेपन के अकाल की भुखमरी का चित्रण निम्नस्थ करमागीत में कितना सच्चा हुआ है।

तिरपन के साल रानी बेचै नथुनिया[4] रे।
नाहीं मिले चार चाउर[5] नहीं रे कोदई।
नाहीं मिले मछुआ,[6] भाजी नाहीं रे सरई[7]।
रानी बेचे नाक नथुनिया रे।

\+ \+ \+

सचमुच जिनके घर में नाज है उनका ही सच्चा नाज़[8] है। अन्न देवताओं की कृपा होने पर अन्य देवताओं की कृपा बिना माँगे ही मिल जाती है। विश्व के जब अन्य देवता रूठ जाते हैं तब अन्न भगवान ही दीन की पुकार को सुनते हैं। अन्न देवता की पूजा में समस्त देवताओं की भक्ति हो जाती है, इसीलिए प्रत्येक मानव को अन्न की उपासना करने में अपने जीवन की सफलता माननी

(१) भिखारी (२) तोड़ना (३) जलना (४) नाक की नथनी (५) चावल (६) मछली (७) साल पेड़ का फल (८) घमण्ड।

चाहिए। प्रसिद्ध लोक-कवि श्री 'चतुरेश' की रोटी शीर्षक कविता में अन्न-देवता की पूर्ण प्रशस्ति विद्यमान है।

"मेरे गिरधर गुपाल, दूसरी है रोटी।
एक देह देय और एक करै मोटी।
जैसें टोपी के संग चाहिए लँगोटी।
वैसेंई रोटी के बिना माला होत खोटी।
रूखी सूखी हो भली मोटी या छोटी।
जाके बिन जीभ आज लटपटान लोटी।
पहुँचत ही पेट बीच, फड़क जात बोटी।
भूखे पेट भजन करत, कठिन है कसौटी।
हम तो कछु पहलें खात, बाँधत फिर चोटी।
कहते 'चतुरेश' सही चाहे लगे खोटी।
मेरे गिरधर गुपाल दूसरी है रोटी। (चटनी)

विश्व-पोषक अन्न-देवता की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

अन्न ब्रह्म को जननी पृथिवी है अतः हमें सदैव अन्न की प्राप्ति के लिए मातृभूमि धरा का स्तवन करते रहना चाहिए और कृषि को अपनाना चाहिए।

यस्याश्चतस्तः प्रदिशः पृथिव्या यस्मामन्नं कृष्टयः संबभूवुः,
या बिभर्त्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।

(पृथ्वी सूक्त मंत्र ४)

जिसकी चार दिशाएँ हैं और जिनमें मनुष्य अन्न पैदा करते हैं, और जो भूमि अनेक प्रकार से प्राणियों की रक्षा करती है वह मातृभूमि हमें गौओं और अन्न से संयुक्त करे।

\+ \+ \+

सुसस्या कृषीष्कृधिः
(उत्तम अन्नवाली खेती करो)

यजुर्वेद (४–१०)

\+ \+ \+

शिवं मह्यं मधु मदस्त्वन्नम्।
(मेरा अन्न कल्याणकारी और मधुर हो)

अथर्ववेद ६–७१–३

विश्वम्भर–किसान

किसान हर दृष्टि से जैसा कि उसका नाम है—अन्नदाता है।

—डॉ० काटजू

किसान अन्नदाता है, विश्वंभर है, और स्वयं शिव-शंकर है। उसके ही अन्न-दान से संसार जीवित है और उसके ही श्रम से पृथ्वी अपने रूप में स्थिर है। संसार को विश्वास-पथ पर किसान ही बढ़ाता है। चंचला लक्ष्मी को किसान ही दृढ़ता देता है। उसके ही अन्न से भगवान अपनी भूख मिटाते हैं, उसके ही अन्न से पशु अपना पेट भरता है और पक्षी घोंसले में सुख की नींद लेता है। स्वर्ग की कल्पना किसान की मेहनत ही करवाती है। जब संसार में हाहाकार मचने लगता है और मानव दानव बनने को इच्छुक होता है, तब यही किसान संसार को शान्ति का पाठ पढ़ाता है; और मनुष्य को देवत्व के मंदिर में ले जाता है। पृथ्वी-पुत्र किसान सबका पूज्य देव है।

जो पृथ्वी का पुत्र,
विश्व का पालन हारा।
जिसके श्रम पर आज,
जा रहा धर्म हमारा।
जो देता विश्वास,
और अधिकार जगत को।
जो देता अधिवास,
और मधु प्यार जगत को।
उसको नित्य प्रणाम,
वही है देव हमारा।
वही राम, घनश्याम,
वही जग का उजियारा।

शिव-शंकर है वही,
धरा का धाम वही है।
वह जग का मधु मास,
धन्य निष्काम वही है। ('चन्द्र')

किसान ही अपने आपको धरती में मिलाकर संसार को धन-वैभव से भरता है और स्वयं नग्न रहकर जगत को वस्त्रों से ढकता है। किसान का शरीर सदैव धूलि से धूसरित रहता है। वह धूप और वर्षा की परवाह न करके अपने काम में लगा रहता है। उसकी सेवाएँ संसार को सुखी बनाने के लिए ही हैं। बैल के साथ जाते हुए किसान को देखकर हम उसे भगवान शंकर के रूप में पूजते हैं। बैशाख-जेठ की धूप से कृषक का गोरा शरीर काला पड़ जाता है, और उसके शरीर से पसीना टपकने लगता है। दिन-रात के परिश्रम से उसकी देह सूख जाती है, फिर भी उसे अपने लक्ष्य का ही ध्यान रहता है। भारतीय किसान की यह साधना भगवान कृष्ण की तपस्या से कम नहीं हैः—

ज्यों रंग स्याम त्यों अंग हैं स्यामल,
जीवन-हेत दोऊ सुखकारी।
नेकु नहीं थिर हैं ठहरात,
न पावत हैं कल त्यों श्रम भारी।
बै जल - धार सदा बरसै,
इत हूँ श्रम-धार रहै नित जारी।
भारत दीन किसान कहैं,
घनश्याम से आज है होड़ हमारी।
(श्री अम्बिकेश)

किसान स्वयं शक्ति है और उसकी इस ताकत में संसार का बल छिपा हुआ है। यदि किसान अपना कर्म छोड़दे तो संसार में आज प्रलय मच जायेगी। 'सब के कर, हर के तर'' कहावत के अनुसार संसार की कार्य-शक्ति किसान के हल के नीचे है। कृषक का हल अन्न उत्पन्न करता है, जिसे खाकर संसार शक्ति प्राप्त करके कर्मशील बनता है। प्रकृति की सुषमा किसान के बल पर ही तो जीवित हैः—

कृषक तुम्हारे ही बल पर तो,
धरती को विश्वास मिला है।
कृषक तुम्हारे ही बल पर तो,
नव ऊषा को हास मिला है।

आदरणीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में किसान पृथ्वी-पुत्र है। उसके श्रम और तप से पृथ्वी ठहरी है। उसके खेतों में एक सौ एक प्रकार की लक्ष्मी जन्म लेती और प्रफुल्लित होती है। गेहूँ, चावल के दानों में लहराता हुआ क्षीर सागर जनपदीय श्री का सच्चा निवास है। किसान की निजवार्त्ता-घरवार्त्ता हमारे अति निकट की वस्तु है। उसमें हमें स्वाभाविक रुचि होनी चाहिए। किसान का दृढ़ मेरु-दंड, उसका वज्र समान अस्थि-संस्थान और लोहे-सा नाड़ी-जाल जब तक सकुशल है तभी तक राष्ट्र की कुशल-क्षेम है। भारतीय किसान का जीवन पूरे महाभारत की शत सहस्री संहिता है। ऐसा कुछ नहीं जो उसमें न हो। खेती और भूमि, पानी और वृष्टि, वायु और ऋतुएँ, नक्षत्र और सूर्य-चन्द्र, तृण और वृक्ष-वनस्पति, नाना भाँति के कीट-पतंग और पशु-पक्षी, अन्न और बीज, घी और दूध इन सब में किसान को रुचि है और सबको किसान के कृषि कार्य में रुचि है।[1]

किसान विश्व का भरण-पोषण करता हुआ भी अपने आपको अकिञ्चन बनाता है। वह अपनी उदारता को भगवान राम की दया मानता है। पके हुए खेत पर किसान को गर्व होता है, फिर भी वह इठलाता नहीं है। पक्षियों के झुण्ड खेत पर मँडराने लगते हैं, और किसान उनका स्वागत करता हुआ कहता है—

राम की चिरइयाँ, राम जी कौ खेत।
खाव री चिरइयाँ, भर भर पेट।

खलिहान में अन्न के ढेर लगे हुए हैं। किसान का मन आनन्द से उछल रहा है। साधु-फकीर किसान की जय-जयकार करते हुए आते हैं और वह पृथ्वी-लाल अपने इन अतिथियों की झोलियों को नाज से भर देता है। पंडित और पुजारी किसान के भाग्य की सराहना करते हैं और मन चाहा अन्न प्राप्त

[1] गाँव का मेरु दण्ड-किसान-(श्री हरगोविन्द गुप्त) भूमिका

करके प्रसन्न होते हैं। भगवान बजरंगबली, भैरव बाबा और शीतला मैया के मन्दिरों में किसान का अन्न भर जाता है और भक्त लोग भोग लगा-लगाकर किसान की उदारता की कहानियाँ कहते हैं।

किसान की शालीनता के विषय में ये पंक्तियाँ कितनी सच्ची हैं:—

हमनें दान करौ है हँस कैं,
सबकौ मान करौ है हँसकैं।
ठंडौ पानी पिला पिला कैं,
सबकौ ध्यान धरौ है हँसकैं।
परमेसुर कौ भोग लगो है,
भैया मोरे धन सैं।
सबकौ जीउ टिकौ है भैया,
ई किसान के कन सैं।
लाँघे हमनें नदिया नारे,
चींटी और परेवा पाले।
तपे घाम में हो गए कारे,
निगतन पड़ गए पग में छाले।
तब लौं हिम्मत कभी न हारी,
जब लौं धरती रही हमारी।

किसान अन्नदेवता का सच्चा सेवक है। अन्नदेव के बल पर ही अन्य असंख्यात देवताओं की सत्ता मानी जा रही है। प्रातःकाल किसान अन्न की स्तुति करता हुआ संसार को सुखी रखने का प्रयास करता है।

नाज हमारौ प्रान बचैया।
नाज हमारौ सान रखैया।
नाज हमारौ ध्यान धरैया।
नाज हमारौ करम करैया।

संसार की परिस्थितियों को आज किसान ने ही बदला है। बंजर भूमि को उर्वरा बनाने वाला किसान ही भू पर स्वर्ग को उतार रहा है। उसके दो हाथ

सहस्र कर बन कर सूर्य की किरणों के समान सब को प्रकाश देते और सबकी पीड़ा हरते हैं:—

जो भूमि पड़ी थी बंजर-सी, जो थी अति ही ऊंची-नीची,
किसने समतल किया इसे है, जल से नहीं स्वेद से सींची।
हरे-भरे ये खेत आज हैं किस मस्ती में हँसते जाने।
कल भर देंगे खलिहानों को, राशि-राशि में स्वर्णिम दाने।
किसने काया पलट भूमि की करदी ? सुनकर प्रश्न हमारा।
आगे बढ़ा कृषक यों बोला—"मेरे श्रम ने मेरे श्रम ने।

(प्रो० रामेश्वर दयाल दुबे एम० ए०)

भारत की पराधीनता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्रिटिश-शासन ने भारत की प्रबल शक्ति—कृषक को मिटाने की पूरी कोशिश की। जो विदेशी सत्ता इस भारत भूमि पर आई उसने ही किसान को मिट्टी में मिलाना चाहा। यह वर्बरता ही है कि पोषक को शोषक मानकर मिटाया जाय और शोषक को पोषक मानकर पनपाया जाय। लेकिन किसान की शक्ति अनन्त है। उससे जो टक्कर लेने आया वही मिटा। जिसने उसे मिटाना चाहा वही मिटकर खाक हो गया। अपने अस्तित्व को खतरे में डालकर दूसरे के अस्तित्व को सुरक्षित रखना महान आत्मा का ही कार्य होता है।

किसान ने अपनी शक्ति का तो ह्रास किया किंतु फिर भी दरवाजे पर आए हुए निर्बल को बल दिया। कृषक ने हजारों मन अन्न पैदा किया और अपने पेट को खाली रखा। उसने कभी भी भेद-भाव को नहीं माना। समदर्शी बनकर उसने प्राणीमात्र की रक्षा की। वह धरती के समान उदार और क्षमाशील बना।

"हम किसान हैं, जो धरती के साथ चले हैं।
हम किसान हैं, जो धरती के साथ पले हैं।
हल के बल पर हमने सारी धरती नापी।
थके नहीं हैं और एड़ियाँ कभी न काँपी। (चन्द्र)

आज हमारे श्रम पर ही तो, मानव की सत्ता है भू पर।
आज हमारे श्रम पर ही तो, दानव की सत्ता है भू पर।
आज हमारे श्रम-सीकर से, धरा-धाम की शक्ति बढ़ी है।
आज हमारे श्रम-सीकर से, भक्तों की अनुरक्ति बढ़ी है।

(श्री चन्द्र)

हमने अर्पित करके निज को,
सबकी सत्ता को पनपाया।
अरे मिटा करके अपने को,
सबको दी बिरवा-सी छाया।
हमने कभी न भेद-भाव को,
अपने जीवन में अपनाया।
जो आया मेरी कुटिया पर,
उसने सब कुछ मुझ से पाया।

(अज्ञात)

भारत के स्वतंत्र होने के पूर्व किसान की दशा अत्यन्त दयनीय थी। उसके पुरुषार्थ की ओर बहुत कम लोग झुके थे। उसकी अवज्ञा में सब को सन्तोष मिला। उसे मिटाकर सत्ताधारियों ने अपने पौरुष का प्रदर्शन किया। ऐसी विषम परिस्थिति में पले हुए किसान के लिए हमारे अनेक कर्मठ और स्वाभिमानी कवियों ने बहुत कुछ लिखा। उनकी ही लेखनी से किसान की आँखों में ज्योति आई और उसने अपनी भुजाओं के बल को फिर से आजमाया। यह विधि बिडम्बना ही है कि जगत् का पेट भरने वाला स्वयं भूखा रहे। जिसके पसीने पर महल खड़े हों उसे एक झोंपड़ी भी न मिले। जिसके बुने हुए कपड़ों से संसार अपनी देह को सजा रहा है वह स्वयं नंगा फिरे। जिस किसान के धन से लक्ष्मीपतियों के कोष जगमगा रहे हों वह एक-एक पैसे के लिए अपना ईमान बेचे। हायरे शासक! हाय री विदेशी सत्ता! तेरे काले कारनामे सदैव याद रहेंगे।

जिनके हाथों में हल-वक्खर, जिनके हाथों में धन है।
जिनके हाथों में हंसिया है, वे भूखे हैं निर्धन हैं।
(कस्त्वं कोऽहम् ?—श्री नवीन)

देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें।
और उठी जातीं उन पर ही, वैभव की ऊँची दीवारें।
(श्री दिनकर)

आहें उठीं दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प पुकारें।
भरी गरीबी के लोहू पर, खड़ी हुई तेरी दीवारें।
वैभव की दीवानी दिल्ली, कृषक मेध की रानी दिल्ली।
(नई दिल्ली के प्रति श्री दिनकर)

इसमें इतना कपड़ा बुनता, यह दुनिया सारी ढकजाये।
फिर भी इसे बनाने वाले, अपनी देह नहीं ढक पाये।
महल बनाने वाले रानी, जीवन भर धरती पर लेटें।
उनकी अर्द्धांगनियाँ, अपने तन में, अपनी लाज समेटें।
(प्रलय-वीणा)

घर घर जेके माथे घुर घुर चलै सकारे जेतवा।
धुरि धुरि जेकर देहिया पालै, राजि भरे का पेटवा।
जेका जमि के मिलै न कब हूँ जोन्हरी केर पिसनमा।
धन्नि धन्नि जीवन है जगमा जुग जुग जियै किसनमा।
(श्री केदारनाथ)

शहर सजे हैं इसके बल पर,
महल खड़े हैं इसके श्रम पर।
भोग-विलास कर रहा मानव,
इस नंगे किसान की दम पर। (श्रीचंद्र)

जगद्भर्ताऽपि यो भिक्षुः, भूतावासोऽनिकेतनः।
विश्वगोप्ताऽपि दिग्वासा, तस्मै कस्मै नमोनमः।

भारत के स्वतंत्र होने पर आज हमारा किसान सुख की साँस ले रहा है। हमारे पूज्य बापू ने किसान के तप की महिमा को अच्छी तरह समझा था। वे कृषक के दुःखों को दूर करने के लिए नंगे पैर दौड़े और अपनी पूरी शक्ति लगाकर इस अन्नदाता किसान को सुखी बनाया।

वास्तव में हमारा भारतवर्ष किसान के बल पर जीवित है। किसान के अहसान से विश्व नत मस्तक है—

'तुझे कुछ भी पता है जन्म का अहसान तुझ पर है।
कृषक, श्रम जीवियों की सांस लेती जान तुझ पर है।
समूचा विश्व मत हो, किन्तु हिन्दुस्तान तुझ पर है।

मुकुट पहना तेरे हाथों,
हमारी देश माता ने।
तुझे अवसर दिए हैं खूब,
लुटकर खुद विधाता ने।

(श्री माखनल चतुर्वेदी)

विश्व का शासन और राज्य का सिंहासन किसान के बल पर ही जीवित है। वैभव की चमक और क्रान्ति की दमक कृषक की उठती हुई भुजाओं पर ही अवलंबित है—

तुम्हें नहीं क्या ज्ञात, तुम्हारे बल पर चलते हैं शासन?
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात, तुम्हारे धन पर निर्भर सिंहासन?
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात, तुम्हारे श्रम पर सब वैभव साधन?
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात, तुम्हारी बलि पर है सब विजय वरण?

(श्री सोहनलाल द्विवेदी)

किसानों की विश्वंभरता अभिनन्दनय है। जीव मात्र को उनका ऋणी होना चाहिए। शुक्राचार्य का कथन है कि एक वार जिसके अन्न का भक्षण कर लिया है उसके हित का चिन्तन हमें सुख से करना चाहिए।[1] कृषक के अन्न का

(१) एक वारमप्यशितं यस्यान्नं ह्यादरेणच।
तदिष्टं चितयेन्नित्यं पालक स्यांजसा न किं। शुक्रनीति पृ० ५६

हम लोग चिरकाल से आस्वाद ले रहे हैं, ऐसी परिस्थिति में इस महान पालक के हित का चिन्तन हम युग-युगों तक करते रहना चाहिए। पूज्य राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तो किसान को ही सच्चा शासक मानते हैं। दासता से जिस मानव का मस्तक झुका रहता है, वह शासन-पटु हो ही नहीं सकता।

हम राज्य लिए मरते हैं।
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।
जिनके खेतों में है अन्न।
कौन अधिक उनसे सम्पन्न।
पत्नी सहित विचरते हैं वे, भव-वैभव भरते हैं।
हम राज्य लिए मरते हैं।

वे गोधन के धनी उदार,
उनको सुलभ सुधा की धार।
सहनशीलता के आगर वे श्रम-सागर तरते हैं।
हम राज्य लिए मरते हैं।

सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।

(साकेत नवम सर्ग पृ० २२२)

इस जगत पालक कृषक के समुत्थान में ही राष्ट्रहित सन्निहित है। राष्ट्र की गरिमा किसान की गरिमा में है।

पूज्य बापू के आशीर्वाद को पाकर आज का किसान अपने आपको सबल मान रहा है। नेहरू सरकार का वरद हस्त अब उसके सिर पर है। किसान के दोनों हाथों में प्रलय-सृजन की शक्ति है। धरती उसकी है और वह धरती का है। उसका खून उबाल ले रहा है। वह मानव है और उसे भी पृथ्वी पर जीने का पूर्ण अधिकार है। हल की नोक से अब वह अपना भाग्य निर्माण कर रहा है। संसार की कोई भी शक्ति उसे पद-दलित नही कर सकती:—

धरती में प्रलय-सृजन के अब ये मालिक हैं।
उनके हाथों में हल है और कुदाली है।
उनके पैरों में जनम रहे अंगारे हैं।
इसलिए कि उनका पेट युगों से खाली है।
हाँ, इन्हीं किसानों-मजदूरों का यह दल है।
कहता आया हूँ जिनको मैं इंसान नया।
जिनके पौरुष का लोहा मान रहा ईश्वर,
धड़कन में जिनकी उबल रहा अरमान नया।

(हरि ठाकुर)

किसान जगत-पालक होने के कारण विष्णु रूप है।

लोक-साहित्य में वृषभ

लोक-साहित्य कृषक जीवन की कहानी है। किसान का पूरा इतिहास लोक-साहित्य के स्वरों में शब्दायमान हुआ है। किसान की शक्ति कृषि है और कृषि की अन्तरात्मा वृषभ है। कर्षक के 'कृषि-बल' नाम को बैल ही सार्थक बनाता है। किसान की चिरन्तन शक्ति बैल है। बैल के अभाव में हलधर साहस खो बैठता है। निराशा के क्षणों में वृषभ ही अपने स्वामी किसान को आशा बँधाता है और दुर्दिन में उसका पूरा साथ देता है। लम्बे-लम्बे सफर बैलों के साथ ही किसान पूरा करता है। अपने गले की घंटी बजा-बजाकर बैल अपने सोते हुए जीवन-साथी किसान को जगाता है, और आने वाले संकट की सूचना देता है। किसान की आँखें और भुजाएँ बैल ही हैं। बैलों के बल पर ही कृषक खेती करता है और अपने परिवार को पालता है। बिना बैलों के खेती करने का साहस करना बड़ी भारी मूर्खता है। जिस प्रकार स्त्री घर को जन्म देती है, उसी प्रकार बैल कृषि का जनक और पोषक है :—

"बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार[1]।
बिन मेहरारू[2] घर करै, चौदह साख लबार[3]॥

हट्टे कट्टे बैलों को देखकर किसान फूला नहीं समाता। वास्तव में वृषभ हलधर कृषक का सच्चा सुहृद और हित चिन्तक है। विवशता के कारण अपने संगी बैल को बेचने वाला किसान अपने से दूर होने वाले भद्र (बैल) के पैर छूता है और मोल लेने वाला किसान अपने घर आए हुए पुनीत अतिथि बैल का पैर छूकर स्वागत करता है। अखती और गोवर्धन पूजन में वृष (बैल) की पूजा होती है। इन अवसरों पर किसान अपने वैभव के प्रतीक बैल को अनेक भावों से चित्रित करता है और उसके सुन्दर मुँह को चूमकर अपने

१ लड़ाई, २ स्त्री (गृहिणी), ३ झूँठा।

हार्दिक स्नेह को प्रकट करता है। विपत्ति में पड़े हुए अथवा उदासीनता से विह्वल अपने स्वामी किसान को देखकर बैल फूट-फूट कर रोता है। कृषक भावावेश में आकर भले ही अपने बलीवर्द (बैल) को भला-बुरा कह बैठे, लेकिन वह यह नहीं सह सकता कि कोई दूसरा व्यक्ति उसे एक अपशब्द भी कहे अथवा उसकी देह को भी छू ले। लोक-कवि घाघ का कथन है कि वही किसान श्रेष्ठ है जिसके पास अच्छे खेत, बाँध और चतुर हलवाहे के साथ-साथ बगली लगे हुए बैल हों :—

'बीघा'[1] बयार बोय, बाँध जो होय बँधाये।
भरा भुसौला होय बबुर जो होय बुवाये।
बढ़ई बसे समीप, बसुला बाढ़ धराये।
पुरविन[2] होय सुजान बिया[3] बोउ निहा बनाये।
बरद[4] बगौधा[5] 'घाघ' वरदिया चतुर सुहाये।
बेटवा होय सपूत, कहे बिन करे कराये।

संस्कृत में बैल के ९ नाम हैं :—

उक्षा, भद्र, बलीवर्द, ऋषभ, वृषभ, वृष, अनड्वान, सौरभेय, गा इन नामों[6] से बैल के अनेक गुणों की ओर हमारा ध्यान जाता है। इसकी पवित्रता, पुरुषार्थ, एवं महानता धार्मिक ग्रन्थों में उल्लिखित है। भगवान शंकर ने बैल को अपनाकर उसकी गरिमा को संसार-प्रसिद्ध कर दिया है। जैन तीर्थंकर भगवान आदिनाथ (श्री ऋषभनाथ) का चिह्न वृषभ है।

"वृषभनाथ का वृषभ जु जान।
अजितनाथ के हाथी मान।।"

(सच्चा जिनवाणी संग्रह पृ० ६१६)

---

१ एक ही जगह के खेतों के बीघे, २ घरवाली, ३ बीज, ४ बैल, ५ बगला लगे हुए।

६ उक्षा, भद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृष:।
अनड्वान्सौरभेयो गौरुक्षाणां संहति रौक्षकम्। अमरकोष २।९।५९

इस प्रकार जैन साहित्य में भी वृषभ का उल्लेख होना स्वाभाविक है। बैलों के पैरों की आहट सुनकर धरती प्रफुल्लित होती है। लोक-साहित्य में बैल का विशेष रूप से निरूपण हुआ है। इसके गुणावगुणों से संबंधित अनेक कहावतें ग्राम निवासियों को सदैव याद रहती हैं। बुन्देलखण्ड के निम्नस्थ लोक-गीत में एक युवती अपने पति से बैल के शुभ-अशुभ चिह्नों के सम्बन्ध में कह रही है।

अरे जात बजारें छैला।
अरे जात बजारें छैला॥
सो लैन अनोखे बैला।
मोरे जात बजारे छैला लाल

कंत बजारें जात हो, कामिन कह कर जोर।
एक अरज सुन लीजिए, कंत मानियो मोर॥

लीला है रंग,
अति जबर जंग।
औगुन न अंग,
एकहु बाके॥
रोमा मुलाम,
पतरो है चाम,
चाहे लगें दाम,
कितने हू बाके॥

सो लिइए असल पुखैला—
मोरे जात बजारें छैला लाल।
भौंरा रंग वांकुड़ा चंचल।
ओछे कानन खैला।
मोरे जात बजारें छैला लाल।

हंसा से बैल,
न लिइए छैल।

न दिइए पैल,
अगरे वा के ।।
कजरा की शान,
लैं लिइए जान ।
दैं दिइए दाम,
चित में दैकें ।।

पुठी उतार घींच पतरी का ।
ना लिइए बिगरैला ।
सो ओछे कानन खैला ।
मोरे जात बजारें छैला लाल ।

करिया के दंत
जिन गुनौ कंत ।
हठ चलौ अंत
मानो विनती ।
सींगन के बीच ।
भोंयन दुबीच ।
भौंरी हो बीच ।
सो हुइयैं असल परैला ।
मोरे जात बजारें छैला, लाल
सो लैन अनोखे बैला ।

\+ + +

मैं यहाँ कुछ ऐसी कहावतों को उद्धृत कर रहा हूँ जिनमें अच्छे और बुरे बैलों के विषय में कहा गया है :—

(१)

जहवाँ देखिहा लोह[१] बैलिया ।
तहवाँ दीहा खोलि थैलिया ।।

---

१ लाल रंग।

(२)

करिया काछी धौंरा[१] बान।
इन्हें छाँड़ि जनि[२] बेसाह्यो आन[३]।
काली कच्छवाले और सफेद बैल को मोल लेना हितकर है।

(३)

हिरन मुतान और पतली पूँछ।
बैल बेसाहो[४] कंत बे पूँछ॥

(४)

सेत रंग औ पीठ बरारी[५]।
ताहि देखि जिन भूल्यो अनारी॥

(५)

छोटे सींग औ छोटी पूँछ।
ऐसा बरदा लो बे पूँछ॥

(६)

नील कंधा बैंगु खुरा।
कभी न निकले कंता बुरा।
छोटा मुँह औ ऐंठा कान।
यही बैल की है पहचान।
पूँछ झँपाऔ छोटे कान।
ऐसे बरद मेहनती जान।

(७)

बैल लीजै कजरा।
दाम दीजै अगरा[६]॥

१ सफेद, २ मत, ३ अन्य (दूसरा), ४ मोल लेना, ५ दबी हुई, ६ पहले।

(८)

बैल तरकना[1] टूटी नाव।
ये काहू दिन दैहें दाँव[2]।।

(९)

बड़सिंगा जनि लीजौ मोल।
कुएँ में डारो रुपया खोल।।

(१०)

नासू करै राज का नास।

(११)

घाघ कहैं सुन बात हमारी।
बूढ़ बैल से भली कुदारी।।

(१२)

बैल मरकहा[3] चमकुल[4] जोय[5]।
वा घर ओरहन[6] नित उठि होय।

(१३)

मयनी[7] बैल बड़ो बलवान।
तनिक में करिहैं ठाढ़े काम।

(१४)

सरग-पताली मेंड़ा सिङ्गी, कोंडीला उर फुला जटैला।
बंदरा डूंड़ा औ सतदन्ता, जानौ असल दगैला।

(१५)

पूँछ झार नगिनिया लखकें, ब्यानौं छोड़ दीजिए छैला।
भल ना लिइयो फटी खुरी कौ, कचनथ कन्द-कचैला।

---

१ चमकने वाला, २ धोखा, ३ कम पसलियों वाला, ४ मारने वाला
५ चटकमटक से रहने वाली, ६ स्त्री, ७ तिरछे सींग वाला,

(१६)

बड़ी मुतौरू लम्बे कान,
हर देखें सें तजैं पिरान।

(१७)

करिया वरदा, जठेरा पूत
बड़े भाग सों होय सपूत।

(१८)

वाछा[१] बैल बहुरिया[२] जोय।
ना घर रहै न खेती होय।

(१९)

सींग मुड़े माथा उठा, मुँह का होवै गोल।
रोम नरम चञ्चल करन, तेज बैल अनमोल।

+ + +

वरदा है किसान कौ मीत।
जो खेती में होय पुनीत।

+ + +

श्री शुक्राचार्य ने अच्छे बैल के विषय में यों कहा है :—

नातिक्रूरः सुपृष्ठश्च वृषभः श्रेष्ठ उच्यते।
त्रिंश द्योयन गंता वा प्रत्यहं भार वाहकः।

शुक्रनीति–पृष्ठ १९९

जो भार को ले चलने में समर्थ हो, जो न अत्यन्त क्रूर हो और जिसकी पीठ सुन्दर हो वह बैल श्रेष्ठ कहा जाता है। उत्तम बैल प्रतिदिन भार लेकर तीन योजन तक चल सकता है।

१ बछुवा, २ नव वधू।

बैल का दर्शन शुभ माना जाता है। स्वप्न में बैल को देखने वाली गर्भिणी स्त्री बलवान एवम् धर्म-धुरंधर पुत्र की माता बनती है।[१]

बैल से सम्बन्धित लोक-कथाएँ अत्यधिक संख्या में हमें प्राप्त होती हैं। इनमें वृषभ की सहनशीलता, कार्यपटुता, कृतज्ञता एवम् चिर उपयोगिता वर्णित है। बुन्देलखण्ड में "डूँड़ा बैल" शीर्षक लोक-कथा विशेष प्रचलित है। इस में डूँड़े बैल ने बन्जारे के पूछने पर महाराजा मांधाता और राजराजेश्वर भगवान राम की सेवा करते हुए अपनी जन-सेवा का उल्लेख किया है।

"कहो डूँड़ तुम कब से भए?
सींगों पुराने दाँतों नए।"

\+ \+ \+

डूँड़े ने जवाब दिया—

मांधाता ने बाँधो पुल,
तब हम पथरा ढोये कुल।
राजा राम मढ़ लङ्का गए,
लते सलीता हम पर गए।

दूसासन की टूटी बाँह,
तब हम रहे बछेरन माँह।
बरस पचासक लादे जीरे,
तब से डूँड़े पर गए धीरे।
बरस पचासक लादी हींग,
कुश्ती लड़ते टूटा सींग॥

इस धरा को "मऊ के जाये" ने हरा भरा किया है, पृथ्वी के पालकत्व भाव को बैल ने ही संसार को बताया है। अपने श्रम से, अपनी खाल से, अपनी

१ प्रथमहि गज सपनो फल सु एह, तीर्थङ्कर सुत तुम उर वसेह।
वृषभ तनों फल सुक्ख खान, जग ज्येष्ठ धर्म रथ धुर प्रधान।
श्री वर्द्धमान पुराण-पृ० १०६

सूखा हड्डियों से जन-जन की सेवा करने वाले बैल की महिमा से कौन परिचित नहीं है। वेदों में भी वृषभ की उपयोगिता विषयक मन्त्र हैं।

मानव ने इस बैल से सब कुछ पाया, लेकिन उसने दी केवल सूखी घास और वृद्ध होने पर डण्डों की मार।

एक किसान बूढ़े बैल को कठोर बन कर बेच रहा है, बूढ़ा बैल आँखों से आँसू टपकाता हुआ कहता है :—

अरे निऊँ रोवैं बूढ़ बैल,
म्हने मत बेचैंरे पापी।
तेरे कुल कोल्हू में चाल्या।
नाज कमाकै तेरे घरां घाल्या,
इब तन्ने करली है बज्जर की छाती

तेरा बज्जड़ खेत मन्ने तोड्या,
गड़ीते न मुँह मोड्या,
इब मेरी बेचै से मांटी।
मेरी रे क्यों बेचै माटी ?
अरे निउ रोवै बूढ़ बैल।

अरे पापी मुझे मत बेच ! मैं तेरे हल में जुतता आयाहूँ और कोल्हू में भी। कितना अनाज कमाकर, मैंने तेरे घर में डाल दिया।

अब तूने अपना हृदय पाषाण बना लिया है। मैंने तेरा किसी कदर बंजर खेत भी उपजाऊ बना डाला, छकड़े में जुतने से भी मैंने कभी मुँह न मोड़ा। और अब तू मेरी मिट्टी मेरी यह वृद्ध देह बेचने जा रहा है। अजी ओ किसान मुझे क्यों बेच रहे हो। (धरती गाती है, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी पृष्ठ ६५-६६)

हमारा प्राचीन साहित्य वृषभ की प्रशस्ति से पुनीत हुआ है। जैसे बिना जीव के देह की स्थिति असम्भव है वैसे ही सफेद बैल के बिना गाड़ी नहीं चल सकती।

बिनु धवलेंण शयणु कि हल्लई।
बिनु जीवेंण देह कि चल्लई।। (कवि पुष्पदन्त)

बलवान और निर्दोष बैलों के दान करने के मनुष्य सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है :—

"अनड्वाहौ च धूर्वाहौ बलवन्तौ सुलक्षणौ।
दत्वा च सप्त जन्मोत्थात्पापाद्विमुच्यते नरः।"

भार ढोने वाले, बलवान, निर्दोष दो बैलों का दान करने वाला पुरुष सात जन्म के पाप से मुक्त हो जाता है। (बृहत्पाराशरी पृ० ३१६)

ग्रामों में आज भी बैल हमारी यात्रा के प्रमुख साधन हैं। विवाहों से बरातियों को ले जाते हुए ये हमारे वृषभ बड़े सुहावने लगते हैं। गले में बँधी हुई घंटियों की मधुर ध्वनि किसको नहीं आकर्षित करती ? सींगों में बँधे हुए रंग-बिरंगे कपड़े बैलों के उन्नत मस्तक को अधिक सुन्दर बनाते हैं। अपनी बहिन के दर्शन के लिये उत्सुक एक भाई गाड़ी में जुते हुए बैलों को दौड़कर चलने के लिए कह रहा है। बैल भाई-बहिन के प्रेम को समझकर दौड़ने लगते हैं।

बैल की भावुकता चिर परिचित है:—

"गाड़ी तो रड़की रेत में वीरा,
उड़ रही गगना धूल,
चालो म्हारा धोहरी[1] उतावला[2] रे,
म्हारी बेन्या[3] बई जोवे[4] बाट।.........
धोहरी का चमक्या सींगड़ा[5] रे।

+ + +

कन्नड़ भाषा की इन मधुर पंक्तियों में किसान के जीवन-सहचर बैल के जीवन का एक सुन्दर चित्र चित्रित किया गया है—

---

१ बैल, २ शीघ्रता से, ३ बहन, ४ प्रतीक्षा करना, ५ सींग।

हूडोदु होस वण्डि, होड़ेयोनु होस मग।
आलीसि केलो बसवण्णा,
आलीसि केलो बसवण्णा, निन बण्डि,
भूमि तल्लणिसि हरिदावो।
होडे हुल्लु मेदु मडुविना नीरू कुडिदु
मरद बुडदल्लि मलगो मलगो बसवेश्वरा।

नयी गाड़ी में जुते हुए बैल नये हैं और गाड़ी हाँकने वाला मेरा पुत्र भी बिलकुल युवा है। हे नंदी! तुम्हारे पैरों की आहट पहचान धरित्री पुलकित हो उठी है। हरी-हरी घास चरकर कुएं का शीतल जल पी, वृक्ष की छाँह में विश्राम करने वाले, हे नंदी! देखो तुम्हारे गले की घंटियों तथा पैरों में बँधे घुंघरू की मधुर ध्वनि से धरती मानो हर्षातिरेक में काँप रही हैं।"

एक बघेली लोक-गीत में भगवान शंकर को अपनी पत्नी पार्वती की प्रसव वेदना से विकल होता हुआ दिखाया गया है। वे चमारिन को बुलाने अपने डुड़वा बैल पर चढ़कर जाते हैं।

अतना सुनिन महादेव छोरिन पीत-पितम्बर, बाघ बघम्बर।
डुड़वा बैल असवार बलावैं चले धकरिन।

धकरिन (चमारिन) महादेवजी के महल तक जाने के लिए सवारी माँगती है—भोलानाथ, तुरंत कहने लगते हैं—

धकरिन डुड़वा बैल असवार हम हूँ चली पैदल।

(चमारिन तुम मेरे डुड़वा बैल पर सवार हो जाओ, मैं पैदल चलूंगा) इस प्रकार भगवान शंकर की जीवन-गाथा में बैल का पग-पग पर उल्लेख मिलता है।

गढ़वाली लोक गीत में एक मोती नामक रसिक बूढ़े बैल की विलासिता का सुन्दर वर्णन किया गया है। वृषभ भी सरस भावनाओं से समन्वित है। बुढ़ापे में रसिकता बढ़ भी तो जाती है।

---

१ बैल—लेखक श्री के० पी० नरसिंह मणि। हिन्दी नवनीत—नवम्बर १९५६ पृ० १००

"साबासी मेरा मोती ढांगा ।
खल्याणी को दांदो ।
हलसुंगी देखीक मोती लमसट होई जाँदो ।
छमकैंत जाल
कलोड़्यो देखीक ढांगू ढौढा देन्दू फाल ।
जोगी को घर,
भैंरनी औंदू, ढांगू, कौवों की डर ।
घोटी जालो हींग,
ओबरा बांध्यूं मोती ढांगू बौंड तैंका सींग ।
खल्याणी को दाँदू ।
हल की बगत ढाँगू खस रड़ी जाँदू ।
काटि जाली साँकी,
ज्वान ज्वान कलोड्यो देखी कनो घुरौंद आँखी ।।
ताल रीगे औत ।
हल जनु लालू ढाँगू सारू तैंकू भौत,
कूटी जाली मेथी ।
मोती ढांगू बच्यूं रलो कुटलान करला खेती,
बन्दूकी को गज ।
मोती ढाँगू बच्यूं रलो चौक देलो सज ।
बूती जाला गेऊँ ।
सौ साठ बेबरी आला मैं मोती न देऊँ ।
उपाड़्यो त खड़ ।
मोती की जोड़ी को लैंलो मल्योऊ जसी बड़ ।
शाबास रे मेरे बूढ़े बैल मोती ।
(खलिहान की मींड)
हलको देखते ही मोती लम्बा पड़जाता है ।
(जाल फेंका गया)
गौवों को देख कर बूढ़ा मोती ढंगार में छलांग मारता है ।

(योगी का घर)

कौवों के डर से बूढ़ा बैल बाहर नहीं निकलता।

(घीटी गई हींग)

बैल बँधा तो नीचे के ओवरे पर उसके सींग ऊपर तक पहुंचे हैं।

(खलिहान की मींड)

हल लगाने के समय बूढ़ा मोती झट खिसक जाता है।

(टहनी काटीं)

जवान गौवों को देखकर वह आँखों से घूरता है।

(ताल पर भौंरा घूमा)

हल तो जैसा भी लगाये मोती पर उसका बहुत सहारा है।

(मेथी कूटी गई)

मोती बैल जिन्दा रहेगा तो मैं कुटले से खेती करलूँगा।

(बन्दूक का गज)

मोती बैल जिन्दा रहेगा तो आंगन में शोभा देगा।

(गेहूँ बोये जायेंगे)

सौ साठ व्यापारी आजायँ पर मैं मोती को न दूँगा।

(घास उखाड़ा)

मोती की जोड़ी का मैं मल्योऊ पक्षी जैसा बैल लाऊँगा।[1]

× × ×

भारत में गोधन का विशेष स्थान है। किसान के घर में बैल ही एक ऐसी सम्पत्ति है कि जिसके बल पर वह जीवन की विषमताओं को साहस के साथ झेलता है। घर के बँटवारे में गोधन का विभाजन होता हीं है। एक किसान बँटवारे में प्राप्त धन का उल्लेख करता हुआ कहता है :—

दुइठे वरदा[2] हीसा[3] पायेन,
जमुना मरिगा आसों[4]।

---

१ गढ़वाली लोक-गीत—श्री गोविन्द चातक पृ०३००, २ बैल, ३ हिस्से में, ४ इस साल।

मगही कहावत में गोल बैल की प्रशंसा अधिक की गई है :—

"दिख बइल गोल, दीहश्र थैली खोल।"

गोल बैल को देख कर शीघ्र थैली खोल देनी चाहिये।

ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य से ही बैल अनड्वान बनता है :—

"अनड्वान् ब्रह्मचर्येण।"

(अथर्व ११-५-१८)

जाति,[१] रंग,[२] रूप,[३] अवस्था[४] स्वाभावादि के आधार पर बैलों के अनेक भेद हैं।

१	२	३	४
(अ) देवहटिया	धवँरा	भँवरिया	दाँतव
(ब) चम्मली	कौंसड़	दोखी	बाछा
(स) ददरिया	करकन्हा	कंजहा	भड़दन्ता
(ह) पुरबिहा	कान्ह	अमहा	नौदरी
इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि

देखिए बैल सम्बन्धी कुछ शब्द लेo हरिहर प्रसार गुप्त

(जनपद वर्ष १—अङ्क १)

आदिवासियों के जीवन-यापन में बैल ने बहुत कुछ सहयोग दिया है। इन के गीतों में बैलों का अनेक रूपों में निर्देश हुआ है। वनों में निवास करने वाले इन भोले मानवों का "करमा" एक सरस लोक-नृत्य है। इसे नाच कर ये शीत की ठण्डी रातों को व्यतीत करते रहते हैं। इस नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीत को करमा गीत कहते हैं। एक गीत में पिता अपने पुत्र से बछड़ों को सिखाने की सलाह देता है :—

"पूता काटालै जाल बेंबरा पूता लेसा ला जेठ-बैसाख।
पूता छोटे-छोटे बछवाँ सिखाव।.......

पुत्र बेवरा (झाड़) को काटले। पुत्र जेठ और बैशाख में उन्हें जला देना। छोटे-छोटे बछड़ों को सिखा।.......

छोटे बैल घाट को पार कैसे करेंगे—इसी चिन्ता से व्याकुल एक प्रेयसी अपने विदेश जाते हुए प्रियतम के वियोग से छट-पटा रही है। बैल उस मोहिनी की व्यथा को समझ जाते हैं। कहा जाता है कि बैल आगे नहीं बढ़े और प्रेयसी ने उन्हें चूम लिया।

करमा

बैला चलिन राई घाट करौंदा बैला छोटे-छोटे रे।
डोंगरे में आगि लगै, जरथै पतेरा।
सुन-सुन के हीरा मोर जरथै करेजा,
बैला चलिन राई घाट करौंदा बैला छोटा रे—

ये बैल छोटे हैं। घाट को कैसे पार करेंगे? जङ्गल में आग लगने से पत्ते जल रहे हैं मेरे प्यारे, तुम्हारा जाना सुनकर मेरा कलेजा जल रहा है। ये छोटे बैल घाट को कैसे पार करेंगे।....

× × ×

इस प्रकार लोक-साहित्य में वृषभ की कथा सृष्टि के प्रारम्भ से चली आरही है और सृष्टि के जीवन के साथ बैल की कहानी जीवित रहेगी। राष्ट्र के अभ्युदय के लिए वृषभ की रक्षा परमावश्यक है, इससे अधिक जरूरी गौ का संरक्षण है। गौ माता ही शक्ति का सतत प्रवाहशील स्रोत है। यह अवध्या और पूज्या है। गौ समान रूप से सब को लाभ पहुँचाती है।

गौ रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री और आदित्यों की भगिनी है।

"माता रुद्राणां दुहिता वसूना, स्वसाऽऽदित्यानामृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गाम नागामदितिं वधिष्ट।

ऋग्वेद ८-१००-१५

जो गौ रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की भगिनी, और दुग्ध का निवास स्थान है, मनुष्यो ! उस निरपराध और अदिति रूपिणी गो देवी का वध नहीं करना[१] ।

वृषभ की वृद्धि के लिए गौ की संवृद्धि आवश्यक है। आज हमें गाएँ चाहिए और बलिष्ठ प्रजा ।

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनू बलम्[२] । अथर्व ६।४।२०

कृषि की सफलता बैलों पर ही निर्भर है। अतः बलिष्ठ वृषभ ही धरती को वसुमती बनाते हैं। खेती को फलवती बनाने के इच्छुक कृषकों को बैल पर्याप्त संख्या में रखने चाहिये और उन्हें पुष्टिकर भोजन खिलाना चाहिए। कमजोर बैलों की दयनीय दशा पर खेत भी रो उठता है। सुन्दर एवं सुडौल वृषभों को देखकर धरती माता प्रसन्न होती है और किसान के भाग्य की सराहना करती हुई उसके घर को धन-धान्य से भर देती है। वृषभ की सेवा धर्म की आराधना है। वृषभ का स्तवन भगवान की प्रशस्ति है। परोपकार निरत वृषभ को सुखी रखने का अर्थ है जन-जन को आनंदमय करना। श्रीमन् पराशर आचार्य द्वारा रचित ये वृषभ की महिमा के श्लोक प्रत्येक भारतीय किसान को स्मरण रखने चाहिए—

यश्चैतान्पाल येद्यलाद्वद्धयेच्चैव यत्नतः ।
जगन्ति तेन सर्वाणि साक्षात्स्युः पालितानि च ।।१।।

यावद्गोपालने पुण्य मुक्तं पूर्वं मनीषिभः ।
उद्गणोऽपि पालने तेषां फलं दशगुणं भवेत् ।।२।।

जगदेतद्धृतं सर्वं मनड्वुद्भिश्चराचरम् ।
वृष एव ततो रक्ष्यः पालनीयश्च सर्वदा ।।३।।

---

१ वैदिक साहित्य पृष्ठ ३५७।

२ गौ रूपी शतधार झरना—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल।

धर्मोऽयं भूतले साक्षाद्ब्रह्मणाह्यवतारितः ।
त्रैलोक्य धारणा यात्रं मंत्राणां च प्रसूतये ।।४।।
अनादेयानि घासानि विघसंति स्वकामतः
भ्रमित्वा भूतले दूरमुक्षाणं को न पूजयेत् ।।५।।
उत्पादयन्ति सस्यानि मर्द्दयन्ति वहन्ति च ।
आनयन्ति दवीयस्थं तदुक्ष्णा कोऽधिकोभुवि ।।६।।

+ + +

जो पुरुष बैलों का पालन और उनकी समृद्धि करता है, वह पुरुष चौदहों भुवन की साक्षात् रक्षा कर चुका है । ।।१।।

जो पुण्य गोपालन में पूर्व में ऋषियों ने कहा है उसका दश गुणा पुण्य वृषभ पालन में होता है ।।२।। इस चराचर जगत् का धारण वृषभ ही किये हैं । इस कारण वृषभ की रक्षा तथा पालन करना सर्वदा योग्य है ।।३।। त्रैलोक्य के धारण, पालन तथा मंत्रों की उत्पत्ति के लिये ब्रह्माजी ने साक्षात् धर्मरूप बैल का अवतार भूतल में किया है ।।४।। वृषभ स्वेच्छा से जो तृण जनों से ग्रहण नहीं किया गया, उसको भक्षण करता हुआ भूतल में दूर तक फिरता है, इसी से वृषभ किसको पूज्य नहीं है ? अर्थात् समस्त जनों से पूजनीय है ।।५।। वृषभ अष्टादश प्रकार के धान्यों की उत्पत्ति तथा वहन, मर्दन और दूर देश से आनयन करता है, इसी से वृषभ से श्रेष्ठ भूतल में कोई नहीं है ।

(वृहत्पाराशरी पृ० १०४-१०५)

बिरवा की छैयाँ

पेड़ मनुष्य जाति के जीवन साथी हैं। प्रकृति की शोभा बढ़ाने वाले ये वृक्ष पत्ते, फूल, और फल देकर सदा हमारी सहायता करते हैं। वृक्षों के द्वारा ही हम भगवान की सृष्टि को पहचानते हैं और प्रकृति से प्रेम करने लगते हैं। वृक्षों का वर्णन प्रत्येक प्रान्त के साहित्य में हमें मिलता है। हमारे गाँव इन वृक्षों से सदैव हरे भरे रहते हैं। जिनके पास घर नहीं है, छाया नहीं है, और खाने को अनाज नहीं है, उन गरीबों को ये पेड़ अपनी ठंडी छाया देकर प्रसन्न करते हैं और मीठे फल खिला कर उनकी भूख मिटाते हैं। यदि पेड़ न हों तो मनुष्य का जीवन दुःखमय हो जाय और किसी के भी घर में चूल्हा न जले। पेड़ों की लकड़ियों से ही मकान बनते हैं और अनेक उपयोगी वस्तुओं का निर्माण होता है। जंगलों में रहने वाले पशु-पक्षी और मनुष्यों की रक्षा इन पेड़ों से ही होती है। हमारे ऋषि-मुनि इन वृक्षों की सहायता से ही अपने जीवन के पूरे वर्षो को वनों में रहकर बिताते थे। खेती करने वाले कृषक वृक्षों के महत्व को अच्छी तरह समझते हैं। जेठ-वैशाख की जलती हुई दुपहरियों में हमारे किसान भाई इन पेड़ों की ही छाया में बैठ कर काम करते हैं और अपने घरेलू पशुओं को बाँधते हैं। खेतों में काम करते-करते जब ये हमारे अन्नदाता किसान थक जाते हैं तब पेड़ की छाया में आराम करते हैं और ठण्डा पानी पीकर नई शक्ति पाते हैं। कुछ दिन पहले नीम की छाया में रस्सी बनाते हुए मेरे एक साथी ने यह कविता सुनाई थी। इसमें वृक्ष की महिमा का ही गान है :—

१

बिरवा की जब छैयाँ पावें।
फिर से प्रान देह में आवें।

लोटा भर पानी पीजावें,
सब भइयन की खैर मनावें।

२

बिरवा सच्चौ मीत हमारौ,
रात दिना कौ साथ हमारौ।
वर्षा से जौ हमें बचावै।
और घाम से हमें रखावै।

३

ई की लकरी सें घर छावें,
खाकें फल हम भूँख मिटावें।
खड़े हमारे लानें बिरवा,
मिटे हमारे लानें बिरवा।

४

काट काटकें बिरवा हमने।
छाँट छाँटकें बिरवा हमने।
अपनौ सारौ काज सँवारौ,
बिरवा हम सबकौ रखवारौ।

५

जो खेती के साथ दिवैया,
पाप दलुद्दर दूर करैया।
और हमारे साँचे भैया,
इनकी प्यारी लगै डरैया

६

झूम झूमकें इनकी डारें,
मुसकातीं हैं मोरे द्वारें।
कहतीं मोसें हाथ पासारें।
हमपै कोऊ हाथ न डारें।

जङ्गल में विलाप करती हुई सीता माता को पेड़ ने ही अपनी छाया दी थी। अशोक वृक्ष के नीचे बैठ कर ही भगवती सीता ने लङ्का में अपने दिन बिताए थे। भगवान राम को वन-वन भटकते हुए देखकर वृक्षों ने ही उनको सान्त्वना दी थी। वनवास के समय विकल पाण्डवों को शमी वृक्ष ने अपनी छाया में रखा था और उनके अस्त्र-शस्त्रों को अपनी शाखाओं में छिपाया था। दशहरे के दिन शमी वृक्ष की सर्वत्र पूजा की जाती है।[1]

हमारे धर्म-शास्त्रों में वृक्षों की पूजा का उल्लेख है। वृक्षों का धार्मिक महत्व कम नहीं है। अनेक पेड़ों में देवी-देवताओं का निवास है। पुराने पेड़ का काटना पाप माना जाता है, इसमें वन-देवता रहते हैं ऐसा कहा जाता है। पीपल एक पवित्र वृक्ष है। "इसके मूल में सृष्टिकर्त्ता भगवान ब्रह्मा का, तने में पालनकर्त्ता विष्णु का तथा शाखाओं में संहारकर्त्ता एकादश रुद्रों का निवास बताया जाता है। पींपल वृक्ष की पूजा प्रसिद्ध है। शनिदेव की कुदृष्टि को शान्त करने के लिए पीपल की आराधना मान्य है। नीम का वृक्ष भगवती दुर्गा का आश्रय स्थान माना जाता है।[2]

वैखिल्य ऋषि के अनुसार अश्वत्थ वृक्ष स्वयं भगवान विष्णु का एक रूप है। अनेक स्थानों पर आज भी इस वृक्ष का यज्ञोपवीत संस्कार होता है और तुलसी के पौधे के साथ इसका विवाह-संस्कार समारोह आयोजित किया जाता है। इसकी सूखी टहनियों से आज भी यज्ञ-हवनाग्नि प्रज्वलित की जाती है।[3]

वट-सावित्री व्रत को करने वाली माताएं वट वृक्ष की पूजा श्रद्धा से करती हैं। आँवले के पेड़ में भगवती लक्ष्मी का निवास बताया गया है। बोधि वृक्ष की शीतल छाया में ही भगवान बुद्ध को आत्मबोध प्राप्त हुआ था। व्रज में

---

१ शमी शमयते पापम्,
शमी शत्रु विनाशिनी।
अर्जुनस्य धनुर्धारी,
रामस्य प्रिय वादिनी।

२ वृक्षों में देवत्व की प्रतिष्ठा—ले० पं० रामप्रताप शास्त्री (योजना फरवरी ५७ पृष्ठ २१।

३ लोक जीवन में वृक्ष-वनस्पति (श्री एम० एस० रंधावा) नवनीत नवम्बर ५६

पेड़ों के पत्तों को तोड़ना पाप समझा जाता है। कहा जाता है कि व्रज के निकुञ्जों में आज भी श्रीं राधा-कृष्ण का विहार होता है और वृक्षों के पत्ते-पत्ते से राधे-राधे की पुकार आती है। तुलसी वृक्ष की पवित्रता को सब जानते हैं। भगवान शंकर को अत्यधिक प्रिय होने से तुलसी का नाम शंकरप्रिया हो गया है। वृक्षों में प्राण हैं, वे पवित्र हैं, परोपकारी हैं और देव-पूज्य हैं। इनको काटना अशुभ माना जाता है। प्राचीन काल में फलदार और पुष्पों से लदे हुए वृक्षों के काटने पर राज्य की ओर से अपराधी को कठिन दण्ड दिया जाता था। हमारे ऋषियों ने फ़लवाले पेड़ों एवं लताओं के काटने और छेदने से उत्पन्न दोष की शान्ति के लिए गायत्री मंत्र जपने की आज्ञा दी है।

(फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्छतम्........)

तुलसीपत्र तोड़ते समय निम्नस्थ श्लोक का उच्चारण प्रत्येक वैष्णव करता है :—

'तुलस्य मृत जन्मासि सदा त्वं केशव प्रिये।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने।।
त्वदंग संभवै पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मल विनाशिनी।।

(आह्निक सूत्रावली पृष्ठ १२७)

भावार्थ—हे विष्णु भगवान की प्यारी, तुलसी तेरा जन्म अमृत से है। हे संसार की शोभा मैं तेरे पत्रों को विष्णु की पूजा के लिए तोड़ रहा हूँ। मैं तुम्हारे शरीर से उत्पन्न पत्तों से भगवान विष्णु की पूजा करता हूं। हे शुद्ध शरीर वाली एवं कलिकाल के पाप को विनाश करने वाली तुलसी तुम मुझे पवित्र करो।

कुछ वृक्ष ऐसे हैं जो स्वयं भगवान के रूप हैं और उनकी पूजा ही भगवान की पूजा मानी जाती है। इस प्रकार के वृक्ष भक्तों को वरदान देते हैं और

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगम् यथायथा।
तथा तथा दमः कार्यो हिंसोयामिति धारणा। मनुस्मृति पृ० ३९६

उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। वनों में निवास करने वाले आदिवासियों की दृष्टि में वृक्षों का अत्यधिक महत्व है। ये विवाह-कार्य के पूर्व बाँस की पूजा करते हैं और आम के पेड़ की आराधना करके अपने कार्य की सफलता मान लेते हैं। पीपल के पेड़ को काटना ब्रह्म-हत्या के समान निन्दनीय जानते हैं। अपने घर के लिए जब वे पेड़ या पेड़ की शाखा काटते हैं तो उसमें निवास करने वाले देवता से प्रार्थना करके अपने को दोषमुक्त कर लेते हैं :—

I wish to cut wood O spirit ! dwelling in this place, please remove thyself, I shall cut down this tree to make a post for my house. Please do not blame me O spirit !

भावार्थ—वृक्ष में निवास करने वाले हे देवता ! मुझे क्षमा करो। अपने मकान के लिए मैं एक खम्भा बनाना चाहता हूँ, इसीलिए पेड़ को काट रहा हूँ। तुम इस पेड़ से हटजाओ। हे देव ! मुझे दोष मत देना। कुछ प्रदेशों के आदिवासी पुत्र प्राप्ति के लिए भी वृक्ष-पूजन करते हैं।१

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से मालूम होता है कि हमारे देश में बाग-बगीचों को लगाने की सामान्य प्रथा थी। राजा से लेकर साधारण जनता बागों की शौकीन थी।२

हमारे वैदिक साहित्य में अनेक वृक्षों का उल्लेख हुआ है। ऋषि-मुनियों के आश्रम वृक्षों से भरे रहते थे। भगवती सीताजी ने स्वयं पंचवटी में अनेक वृक्षों को लगाकर और जल से सींचकर अपने वृक्ष-प्रेम का परिचय दिया था। "भगवती पार्वती ने देवदारु का पेड़ लगा कर उसके प्रति पुत्र-स्नेह की भावना को प्रकट किया था।३

संसार में रहते हुए हमें पेड़ों की उपयोगिता को नहीं भूलना चाहिए। पृथ्वी की शोभा के साधन ये वृक्ष ओलों से हमारी रक्षा करते हैं और वर्षा

---

१ विशेष अध्ययन के लिए देखिए After math—A supplement to the Golden Bough, by Sir James George Frazer. P-P. 126. chapter VI–Worship of trees. २ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद—पृ० ४४, ३ रघुवंश द्वितीय सर्ग।

से हमें बचाते हैं। पेड़ों से भरे हुए प्रदेश में वर्षा अच्छी होती है। रक्षक की तरह खड़े हुए ये पेड़ बाढ़ से भी हमारा बचाव किया करते हैं। वृक्ष धरती के उपजाऊपन को भी बढ़ाते हैं। पेड़ों से हरा भरा स्थान स्वास्थ्य को अच्छा बनाता है। पेड़ों की पैदावारें देश की सम्पत्ति बढ़ाने में पूर्ण सहायक सिद्ध हो चुकी हैं। इसीलिए एक कृषि-विशारद का कथन है—वर्ष में जितने पेड़ काटो—उनसे दुगने लगाओ। सत्य बात तो यह है कि पेड़ का कोई भी ऐसा भाग नहीं है जो हमारे उपयोग में न आता हो। वैद्यक-ग्रन्थों में इन वृक्षों से अनेक ओषधियों का निर्माण होता है जो रोग मिटाने और शक्ति बढ़ाने में अपना अपूर्व प्रभाव दिखाती हैं। हमारे ग्राम साहित्य में पेड़ों के विषय में बहुत कुछ मिलता है। यहाँ ये चुपचाप खड़े हुए पेड़ आदमी की तरह बोलते हैं और राजा की तरह आज्ञाएँ देते हैं! हमारे लोक-गीत वृक्षों की प्रशंसा करते हुए कभी थकते ही नहीं हैं। वास्तव में लोक-गीतों का जन्म बिरवा की छाँह में ही हुआ है। इन ग्राम-गीतों के राम बाग लगाते हैं। सीता उसे जल से सींचती हैं और लक्ष्मण उसकी रखवारी करते हैं:—

राम की लगाई फुलवरिया,
फुलै फुलवरिया हो।
रामा—सीता तो सींचैं उठ भोर
सबद सुनि कोइलिया—
लक्षिमन करैं रखवारी
त हनमत झाँकहि हो।
रामा—फुलवा त बिनत मलिनिया
कमर झुकजाइत हो।

राम क बगिया सिता कै फुलवारी,
लछिमन देवरा बइठ रखवारी।

वह समय कितना सुन्दर था जब घर-घर में फुलवारी थी और पुष्पों की महक से सारा वायुमण्डल झूम जाता था। चन्दन और लौंग के पेड़ सब लोग लगाया करते थे। यदि भगवान राम के महल के आगे चन्दन का वृक्ष लहरा रहा

है तो धोबी के मकान के सामने भी चन्दन का बिरवा झूम-झूम कर रास्ते में चलने वालों के मन को हरा-भरा करता है।

रमा के दुआरा चन्दन के पेड़वा,
मोतियन कर है ओ।
खिड़रा[1] ओही तरी संजीवी साजत,
सजगै सुवर बरात, रामा सजगै....

धोबिया के दुआरे चन्दन का बिरवा,
आहीं तरै सेंदुरा बिकाय राजा के सोहागवा।

बाबा के दुआरे चन्दन गाँछ बिरवा
ओही तरी जोग विकाय।

गङ्गा जमुनवा चन्दन केर पेड़वा, सब देउतन केर थान।
सब देउता मिलि एक मत कीन्हिन, सीता कइ रचवै बिआह।

हमारे लोक-गीत लोक-जीवन के सच्चे चित्र हैं। इनमें हमारा प्राचीन भारत चित्रित हुआ है। गीतों की निम्नस्थ पंक्तियों से सिद्ध है कि हमारी भारत-भूमि पर सर्वत्र विविध वृक्षों की छाया थी और उनके मनोहर पुष्पों से धरा हमेशा सुगन्धित रहा करती थी। वृक्ष हमारे जीवन के सच्चे साथी हैं। आम, महुआ, इमली, खजूर, नारंगी, नीम, बाँस, चन्दन, लौंग, अनार, पीपल, तुलसी, बढ़ आदि वृक्षों की उपयोगिता स्पष्ट है। परोपकार की भावना से भी हमारे यहाँ वृक्षों को लगाया जाता था। पथिकों व पक्षियों को छाया प्राप्त होगी और फल खाकर वे अपनी लम्बी यात्रा को आराम से पूरी करेंगे। इसीलिए हमारे धार्मिक पूर्वज अनेक प्रकार के फलदार और छायादार पेड़ों को लगाकर पुण्य कमाते थे।

"पाँच पेड़वा बाबा अमवाँ लगायों, अमवा बइठे रखवार।"

मोर पछुरवा[2] रे लवङ्गा[3] डरिया लौंग चुओ आधी रात।
बाबा निमिया क पेड़ जिनि काटेउ, निमिया चिरैया बसेर।

---

१ आम, २ पिछवाड़े, ३ लौंग की डाल।

जेठवा लगावा नवरँगिया[1] रे, देवरा नेबुआ[2] अनार।
उन पिया बोये रस बिरवा रे देखेउ मुरझि न जाइ॥

स्वामी के आँगन लौंगन बिरछा, सुअना बैठो जाय मोरे लाल।

वर पैं डारो पालना, पीपर पै डारी डोर।
जौ लौं भइया सोउन लागे तोनों आगई भोर।

आमा की सीतल छइयाँ ओई तरैं गौरा[3] की सेज।

मोरे पिछवारे एक बगिया लगत है निबुला[4] नरंगी अनार रे।
आम नीम की शीतल छैंइयाँ, ओई तरें स्वामी मेरे चौपर खेलैं।
रामा के दुआरे पिपर[5] केर[6] बिरवा, मोतियन करहइ डार।
गंगा के ओरे जमुना के छोरे, एक महुआ एक आम।

बिरवा के तो मबुफल खैंबी, तजवी भूँख पियास।
भरी दुपरियाँ पेड़ पै चढ़, लछमन हेरे राह।

अमवा[7] महुलिया[8] घन पेंड़, जेहिरे नीचे एक राह परी हो।
अमवा लगाये क बड़ फल, जो बड़ करहइ हो।
अमवाँ मा लगिहँइ टिकोरिया,[9] सुवना[10] भल गदरइ[11] हो -
मोरे पछरवाँ बाँस बसेरी, कोइली लीन्ह बसेर।
मोरे के अँगना तुलसिया[12] रे, अरे पनवन[13] झालरि[14] हो।
चनन[15] कै बिरछा[16] हरेर तौ देखतै सुहावन।

इमली क पेड़ सुरूहुर[17] अवरी झुरूहुर[18]।

मोरे पिछवारे एक बगिया लगत है, निबुला नरंगी अनार रे।
कच्ची कलिन हाय सुअना कतर गयी, अँगिया में पड़ गयो दाग रे।
निबिया कै पेड़वा जब नीक लागै जब निबकौरी[19] न होय,
गैहूँ की रोटिया जब नीक लागै, घी से चभोरी[20] होय।

१ नारंगी, २ नीबू, ३ पार्वती, ४ नीबू, ५ पीपल, ६ का, ७ आम, ८ महुआ, ९ अमियाँ, १० तोते, ११ कुतरना, १२ तुलसावृक्ष, १३ पत्ते, १४ हरा भरा; १५ चना, १६ पेड़, १७ सीधा, १८ छायादार, १९ निबौरी, २० खूब चुपड़ी हुई।

काहे का सेमइ[1] हरदी का बिरवा हो काहे का मैंन[2]।
काहे का सेमइ ये ढेरिया[3] फलानेदेई का चहि दूध पिआय।
पिअरी[4] का सेमइ, मैं हरदी का बिरवा, चुनरी का मैंन।
धरम का सेबइ ढेरिया फलाने देई, काँचहि दूध पिआय।

वृक्षों में गहरी कोमल भावनाएँ रहती हैं। उनमें भी सुन्दरता के प्रति आकर्षण है। इनमें मानवता है, और इसीलिए वे दूसरों के दुख में दुखी और सुख में सुखी रहते हैं[5]। भगवान कृष्ण के वियोग में रोते हुए गोपालों को देखकर इधर मधुबन के पेड़ सूखने लगे थे, और उधर मथुरा के वृक्षों ने फूल बरसा कर कन्हैया का स्वागत किया था[6]। कवि प्रसिद्धि है कि सुन्दरियों के पैरों के आघात से अशोक वृक्ष में पुष्प खिल आते हैं[7]। आम के पेड़ का बौराना सबको प्रिय लगता है। बौर देखकर ही तो आम के फलों की आशा होती है। इमली के पेड़ की सघनता प्रसिद्ध है। दूब का फैलना किसको नहीं लुभाता ?

कमल को खिलते देखकर मनुष्य का हृदय खिल उठता है। एक माता अपने पुत्र को आशीर्वाद देती हुई कहती है :—

'अमवा[7] के नांई[8] लाला कर हो[9] अमिलिया[10] से झवरा[11]।
दुबिया[12] के नाँई तुम छछला[13] कमल अइसे फूला हो।

वृक्षों की भावुकता हमें लोक-कथाओं में खूब देखने को मिलती है। गांवों में ऐसी अनेक कथाएं प्रचलित हैं जिनमें कहा जाता है कि पेड़ अपने सींचने वाले की मृत्यु पर सूख जाता है अथवा कुम्हला जाता है। प्राचीन समय में पेड़ की बढ़ती से वियोग में व्याकुल युवतियाँ परदेश गए हुए अपने स्वामी के चिर वियोग का अनुभव कर लेती थीं।

---

१ पालनपोषण करना, २ मोम, ३ लकड़ी, ४ विवाह की पीली धोती, ५ आसीत राम शोकार्तः निस्तब्धमपि पादपं (वा० रा०), ६ कृष्णायन श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, ७ आम का पेड़, ८ समान, ९ बौराना, १० इमली का पेड़, ११ सघनता से फैलना, १२ दूब, १३ फैलना।

'कउनी उमिरिय सासु निमिया लगाए न,
कउनी उमिरिया विदेसवा गये हो राम।
खेलत कूदत बहुआ हो निमिया लगाये,
रेखिया उगत गै विदेसया हो राम।
फरि गए निमिया लहसि परी डरिया,
तबहूँ न आये विदिसिया हो राम ॥

बहू पूछती है—सास जी—किस उम्र में नीम का पेड़ लगाया था ? और किस उम्र में मेरे स्वामी विदेश गए थे ?

सास उत्तर देती है—मेरी प्यारी बहू, खेलते-कूदते नीम का पेड़ लगाया था और रेखाओं के उगते ही वह विदेश चला गया था।

बहू कहती है—नीम में फल लग गए हैं और डगारें फैल गई हैं फिर भी विदिसिया (मेरे पति) नहीं आए हैं।

लोक-गीतों की दुनिया निराली है। इसमें वृक्ष मानव के साथ बातचीत करते हैं और उनके साथ अपना समत्व बनाते हुए समय विताते हैं।

एक युवती के पूछने पर आम का पेड़ उत्तर देता है कि आकाश से रिमझिम वृष्टि होने से ही उस पर बौर लगा है :—

"कि गुन अमवा वउरलै अरे ना जानों कौने गुन।
कि अरे अमवा तोके मलिया जो सींचेला कि अपने गुन।
नाहीं मोके मलिया जो सींचेला नाहीं हम अपने गुन।
रिमकि झिमकि दैव बरिसै उनके जो बुन्दे परे ॥[१]

वृक्षों के माध्यम से हमारे कवियों ने बड़ी ऊँची-ऊँची बातें कह डाली हैं। रहीम ने राम-कृपा की महत्ता बताते हुए कहा है :—

रहिमन बिरवा बाग कौ, सींचे तें कुम्हलाय।
राम भरोसे जे रहैं, पर्वत पै हरियाँय ॥

---

१ कविता कौमुदी तीसरा भाग पृ० २१०।

एक प्रेमी अपने दिल की बातें मेंहदी के पत्ते पर लिख कर अपनी प्रेमिका के पास पहुँचाने की कोशिश करता है :—

"वर्गे-[१]हिना पै जाके लिखूं, दर्दे दिल[२] की बात।
शायद कि रफ्ते[३] रफ्ते लगे दिलरूबा[४] के हाथ ॥

हमारे साहित्य में हजारों ऐसी कहावतें हैं जिनमें पेड़ों का उल्लेख हुआ है। इनसे हमें अनेक सच्ची बातों का अनुभव होता है। ऐसी कुछ कहावतें यहाँ दी जारही हैं :—

१. फल से पेड़ जानो जात है।
२. होनहार बिरवान के होत चीकने पात।
३. अपनो-फल पेड़ नइ खात।
४. वह कौन पेड़ है जिसे हवा न लगी हो।
५. पेड़ अपने काटने वाले को भी छाया देता है।
६. बसन्त में सूखे पेड़ भी हरे हो जाते हैं।
७. पेड़ दूसरों के ही लिए फूलते-फलते हैं।
८. आम खाने हैं कि पेड़ गिनने।
९. नीम न मीठो होय, सींचो गुड़ घी से चहे।
१०. जहां पेड़ नहीं वहां एरण्ड ही वृक्ष है।

वृक्षों से सम्बन्धित हजारों पहेलियाँ हमारे गाँवों में प्रचलित हैं, लेकिन वृक्षों की अपेक्षा फलों का इन में अधिक विवरण मिलता है। कुछ ऐसी पहेलियाँ ये हैं :—

१. एक रूख ऐसा—जी में पथरा ही पथरा। (कैंथ का पेड़)
२. एक पेड़ जी के लामे लामे कान। (केले का दरख्त)
३. एक पेड़ में हँसयई हसिया। (इमली का वृक्ष)
४. पर्ले भई ती बैंनें बैनें, फिर भए ते भैया।
भैया ऊपर बाप भए हैं, फिर भई है मइया॥
(महुआ)

---

१ मेंहदी का पत्ता, २ दिल की पीड़ा, ३ धीरे-धीरे, ४ मनमोहनी।

५. एक तरवर का फल है तर, पहले नारी पीछे नर।
वा फल को यह देखो हाल, बाहर खाल और भीतर बाल ॥
(आम)

६. एड़ी के घाम घुम, चाकर प हरुआ।
फेर के लाल फर, फरिगइली मिठइआ ॥
(केला)

७. लोठी पर कोठी, कोठी पर पेहान।
ओपर बइठे गुल गुलवा देवान ॥
(रामदाना का पेड़)

८. सावन फुले चइत गाँदाँराइ।
तेकर फर सुग्गा ना खाइ ॥
(बबूल का वृक्ष)

९. मैं हूँ लम्बा, छोटी छैया।
मो पै चढ़कें देखो सैयाँ ॥
(ताड़ का पेड़)

१०. मैं गोरी लड़का काला है।
पानी पी पी कर पाला है ॥
(जामुन का पेड़)

ये हरे भरे वृक्ष हमारे सुखी परिवार के प्रतीक भी हैं। इस प्रकार वृक्षों की कहानी बहुत लम्बी है। इनसे हम बहुत कुछ पाते और सीखते हैं। इनकी छाया में रहकर हम जल्दी से भगवान के दर्शन कर सकते हैं। इनको सींचिए और मित्र की तरह इनसे बातचीत कीजिए। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बबूल की जड़ में कुछ समय तक पानी डालकर एक भूत को प्रसन्न किया था, जिसकी कृपा से उन्हें हनुमानजी मिले जिन्होंने भगवान राम को तुलसीदासजी के सामने लाकर खड़ा कर दिया था। वृक्ष पवित्र हैं। ये स्वयं देवरूप हैं।

इनको सताना, या काटना उचित नहीं है। जिसकी छाया में रहो, उसका हमेशा साथ दो। जो तुम्हें शरण दे, उसे अपना स्वामी मानो।

"जाकी बैठे छाँह।
ताहि दीजिए बाँह।
जाकी बैठे छैयाँ।
ताहि मानिए सैंया।"

---

१ चंदन, नीबू, नारंगी नीम आदि वृक्षों को पारस्परिक और कौटुम्बिक जीवन का प्रतीक मानकर उनकी समृद्धि द्वारा जीवन की समृद्धि और उनके ह्रास द्वारा जीवन का ह्रास लक्षित करना गीतों में-हिन्दी राजस्थानी और गुजराती इसी प्रकार अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी माना गया है। (राजस्थानी लोक गीत पृ० १७)।

वृक्षारोपण का माहात्म्य

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिञ्चिणीभिः।
षट् चम्पकांस्ताल शतत्रयं च नवाम्र वृक्षैर्नरक न पश्येत् ॥१॥
यावन्ति खादन्ति फलानि वृक्षात्क्षुद्वह्नि दग्धास्तनुभृन्नराद्याः ।
वर्षाणि तावन्ति वसन्ति नाके वृक्षैक वापास्तमरौघ सेव्याः ॥२॥
यावन्ति पुष्पाणि महीरुहाणां, दिवौकसां मूर्धनि भूतलेवा।
पतन्ति तावन्ति च वत्सराणां, शतानि नाके रमतेऽगवापी ॥३॥
यत्काल पक्वैर्मधुरैरजस्रं शाखाच्युतैः स्वादुफलैः खगौघाः ।
सत्वानि सर्वाण्यपि तर्पयन्ति, तच्छ्राद्ध दानं मुनयो वदन्ति ॥४॥

एक पीपल, एक नीम, एक वट, दश इमली, छह चंपक, तीन सौ ताल वृक्ष, नौ आम वृक्ष लगाने वाला, पुरुष नरकगामी नहीं होता ॥१॥ क्षुधारूप अग्नि से दग्ध मनुष्य पक्षी आदि प्राणी वृक्षों से लेकर जितने फल खाते हैं उतने वर्ष वृक्ष लगाने वाला पुरुष देवतागणों से सेव्यमान स्वर्ग में वास करता है ॥२॥

पुण्यात्मा मनुष्य के लगाये हुए बगीचे के जितने फूल देवताओं के मस्तक पर चढ़ाये जाते हैं, या पृथ्वी पर गिरते हैं उतने शतवर्ष तक वह वृक्ष लगाने वाला स्वर्ग में रमण करता है ॥३॥

जिस मनुष्य के बाग के वृक्ष की डालियों से गिरे हुए पक्के और मीठे स्वादिष्ट फलों से पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड तथा सब तरह के प्राणी तृप्त होते हैं इसे मुनि लोग श्राद्ध दान के समान कहते हैं। (वृहत्पाराशरी ३६४)

वन एक विलक्षण जीव निकाय है जिसमें असीम दया और सहिष्णुता भरी हुई है। वह अपने पोषण के लिए किसी से कुछ नहीं माँगता। उसका हृदय इतना विशाल है कि वह अपने निजी जीवन के फल को बड़ी उदारता-पूर्वक सम्पूर्ण लोक को अर्पित करता रहता है। वह सब जीवों की रक्षा

करता है—यहाँ तक कि उस लकड़ी काटने वाले को भी अपनी छाया से विश्राम देता है जो उसे सदा नष्ट करता है।

भगवान बुद्ध

उगता हुआ पेड़ प्रगतिशील राष्ट्र का प्रतीक है। श्री जवाहरलाल नेहरू

पेड़ों से वर्षा, वर्षा से अन्न और अन्न ही जीवन है।

श्री० के० एम० मुंशी

लोक-गीतों में कूप-सर-सरिता-वर्णन

जलाशय हमारे जीवन के सर्वस्व हैं। जीवनत्व जीवन का इनके जीवन से ही पुलकित होता रहता है। लोक-जीवन की सरसता के केन्द्र-विन्दु ये ही जलाशय हैं। छबीली कामिनी की मनुहार इन जलाशयों की चंचल लहरों को देखकर अँगड़ाइयाँ लेने लगती है। हास-परिहास एवं प्रेमाभिनय इनके ही तट पर सफल होता है। हमारे लोक-गीतों में कूप, सर और सरिता का अनेक रूपों में वर्णन मिलता है। ग्रामों में नवयुवतियाँ अपने सलोने लावण्य को सुसज्जित करके जब पनघट पर पहुँचती हैं, तब रसिकों की बातें सुनिये। उनमें आपको अमोद-प्रमोद की वह सुरभि मिलेगी, जिसे आप कभी न भूल सकेंगे। जल खींचती हुईं प्रमदाएँ देवताओं के मन को भी आकर्षित कर लेती हैं। प्रतीक्षा में ही दिन काटने वाले छैला पानी भरने की वेला को विशेष आतुर होकर स्मरण करते हैं। पनघट से वापिस आती हुईं नवेलियाँ घूँघट-पट से सब कुछ देखती हैं और अपने अनुभावों को भी प्रकट कर देती हैं। उनके सिर पर रखी हुई गगरिया भी उनकी मदमाती गति से थिरकने लगती है। सर-सरिताओं के रहते हुए भी ग्रामों में कूएँ होते हैं जिन पर सुबह और शाम यौवन-गर्विता नवोढ़ाओं एवम् मध्याओं की भीड़ लगी रहती है। बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध लोक-कवि ईसुरी ने अपने प्रेम की अभिव्यक्ति में कूओं को विशेष महत्व दिया है।

"पानी भरन कुवा पै जानें, नये यार के लानें।
भरो भराओ लुड़का देतीं, जौलों होत न चानें।।
उनके मन की हम सुन लैबी, अपने मन की कानें।
नायें से हम हँसें ईसरी, माय सें वो मुसकानें।।

× × ×

भावी भर गओ पानी तोरा, दिल बेदिल भओ मोरा।
नाँय माँय में लगो रात तौ, बदकावे कौ डोरा॥
कानें ती सो कान न पाई, मन में भरी हिलोरा।
घरी दोक नौं और भरौना, खेपें पन्द्रा सोरा।
अब की बेर कुआ से ईसुर, संगै ल्याई जोरा॥

देखी पनहारिन की भीरें, कुआँ गाँव के नीरें।
ऐसी घनी आउतीं जातीं, गैल मिलै ना चीरें॥
दो दो जनी एक ज्योरा सें, घड़ा एँचती धीरें।
"ईसुर' ऐसी देखीं हमने, दई की खाईं अहीरें॥

जिदना लौट हेरती नइयाँ, बुरऔ लगत है गुइयाँ।
सूक जात मों बात कड़त ना, मन हो जात मरइयाँ॥
दुबिदा होय तौन कै डारो, तुम हो जौन करइयाँ।
'ईसुर' पानी भरन चली गई, कछवारे की कुइयाँ॥

लोक-गीतों में हमें कूएं की रसिकता के भी दर्शन होते हैं। जिसमें सदैव जीवन हिलोरें मारता हो उसे अरसिक कैसे कहा जा सकता है ? सुन्दरी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कूप उमड़ ही तो पड़ा :—

'कोऊ आई सुघरि पनिहारि।
कुअला उमड़ि परे।........

प्रेमी और प्रेमिका लोटा-रस्सी बन कर कूएँ में जाना चाहते हैं। प्रेम में सामीप्य की इच्छा होती है।

तुम प्यारी रस्सी, हम प्यारे लोटा,
कुएँ में चलेंगे दोनों जनें।

गीतों में अनेक ऐसी कथाएँ गुम्फित हैं, जिनमें कूप के पनघट पर ही प्रेम साकार बन जाता है। वास्तव में पनघट राग-अनुराग का देवालय है, प्रेम की रंगभूमि है। इसी पनघट के समय पत्थरों के स्पर्श से शुष्क हृदय भी सरस बन जाता है।

कच्चा रे आमा जमुन गदराय।
पनघट मां रंगीला छयल बिडुराय।

पथरा का बइठे पथर डुलिजाय।
तोर मस्ती जवानी नजर डुलिजाय।

चमकते हुए नेत्रों के लिये कूप के चमकते हुए जल की स्मृति स्वाभाविक है :—

चमकहिं कुआँ की चमकहिं पानी,
चमकैं नैन तुम्हार। ....

लोक-संस्कारों में कुआँ-पूजन का महत्व है। यह जल-देवता की पूजा का ही रूप है। नव-जात शिशु की माता कूप-पूजन के बाद शुद्ध मानी जाती है।

'ऊपर बादल घरायँ गोरी धन पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कहियो उन ससुरा बड़े से, अँगना में कुइया खुदावरे,
तुमरी बहु पनिया खों निकरी।....

कूओं के विवाह भी होते हैं। इस सम्बन्ध में अनेक भोजपुरी लोक-गीत उद्धृत किये जा सकते हैं।

इस प्रकार कूप हमारे लोक-जीवन का एक अङ्ग बन गया है।

तालाब का भी उल्लेख हमें लोक-गीतों में प्रचुरता के साथ मिलता है। ग्राम्य-जीवन के चित्रण में तालाब की गरिमा नहीं भुलाई जा सकती। सरोवरों से हमारे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं। पशु-पक्षी एवं मानव इनके जल से अपनी प्यास बुझाते हैं। कृषि का संवर्धन कई क्षेत्रों में सरोवरों पर ही आधारित देखा गया है।

(खेती तो जबही करो, तब ऊपर तला खुदाब।)

प्रातःकाल हमारे ग्रामीण भाई मुखारी (दातुन) करते हुए तालाब के समीप देखे जाते हैं। हमारे राम गाँव के पास वाले तलवा (तालाब) के निकट दातुन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं :—

"गाँव के गोइँडे एक तलवा त रांम दातुन करैं हैं हो।"

ताल की मिट्टी हमारे दैनिक उपयोग की वस्तु है। कुम्हार इसे धनदाता मानता है।

'छिछिल तलउना कै चेपुल माटी।"

ग्रामों की शोभा में तकता (दर्पण) से सुन्दर तालाब चार चाँद लगा देते हैं :—

"तकता से वे ताल भरे, औ पहार बनवार।"

हमारे प्रसिद्ध लोक-कवि श्री वंशीधर को तो ये ताल कभी भूलते ही नही हैं।

'तरा तरा के प्रान-पखेरू, नौंनें पार तला के।
घिरीं टोरियाँ ठांड़ी, जैंसे जुरे सबई कुरमा के॥
साफा बंधौ पिछौरा डारें, फिरें बड़े रसिया से।
ताल कुआ पै सुना परत ते, वे रस बोल घना के॥'

भुँजरियाँ तालाब की लहरों को ही अर्पित की जाती हैं। अन्य को नहीं। एक बहिन के ये शब्द कितने सबल हैं :—

"सोनें की नादें दूध भरी सो भुँजरियाँ लेव सिराय।
कै जै हैं तला की पार पै कै जै हैं भुँजरिया सूक।"

भरे हुए ताल को देख कर एक युवती का हृदय प्रिय-मिलन के लिये आतुर हो जाता है :—

"भरा ताल जल हल कै
पुरइन लहरा लेय॥
साजन केर मिलन का,
जियरा लहरिया लेय॥"

बनवासी आदिवासी के गीतों में तालाब सदैव मुखरित है।

तलवा के मिटवा पर देखली तीन बिरवा,

केरा कटहर आम।
ओकरे छाँहि बइठल तीन बनसुतिया,
देखली सीता लछिमन राम।'

गाँव का एक निवासी कहता है कि तलवा का स्नान कैसे छूट सकता है :—

"कंजी केर मुखारी दादू,
तलवा केर नहाब।
गउअन केर चराउब दादू,
कबहूँ न छूटै आय ॥"

निम्नस्थ पंक्तियों में एक तालाब का कितना सुन्दर चित्र अङ्कित किया गया है :—

"बस्ती बसत बुढ़ागर ऊँचै पै तलवा की आवे बहार।
बामन सिड्ढी हैं तलवा में, बँधे चँवतरा तीन।
दो बिरछा हैं आम के, निस दिन भरती मीन।
सोभा कमल फूल की है न्यारी, जहँ भौंरा करैं गुंजार।
राज घाट के ऊपरे, बरिया की है छाँह।
चौकी हनुमत वीर की, लगी ध्वजा फहराँय।
चबतरा अजब बनौ है चौपन से बनवाए श्री मुख्त्यार।

तालाब लोक-गीतों में परिवार के प्रतीक-रूप में भी अङ्कित हुआ है :—

'तलवा न मोंहि सुहाय त एक कमल विन हो।'

टिकुली की चमक-दमक के सम्बन्ध में तालाब का उल्लेख सुन्दर बन पड़ा है :—

'तलवा में चमकेला चाल्हवा मछरिया,
इतरा[1] में चमकेले डोरि।
साभावा में चमकेले सामि के पगरिया,
लिलारा पर टिकुली लमोरि[2] ॥'

---

१ कुआँ, २ लम्बी।

तालाब से परहित विशेष होता है, इसीलिए सरोवर के खुदवाने तथा मरम्मत कराने में विशेष पुण्य-लाभ माना गया है :—

"पोखरा खनाए क बड़ फल जो जल ओगरइ हो ।
गउवा पिऊइँ जुड़ पानी त पुरइन लहरइ हो ।
(रामा) लोगवा पियें ठंडा पानी त जय-जय बोलै हो ।"

लोकोक्ति के रूप में यह तला (तालाब) का निर्देश भी अच्छा है ।

रैंओ मन मोहन से बरकी, तुम नइँ भई अहिर की ।
होत भोर जमने ना जइयौ, दै कें कोर कजर की ।
उनको राज उनइँ की रइयत, सिर पर बात जबर की ।
ईसुर कात तला में बंसके, सैये सान मगर की ।

सरिता-वर्णन

भारतवर्ष की प्राकृतिक शोभा में नदियों का निश्चित रूप से विशिष्ट स्थान है। सरिता के तट पर निवास करना कई दृष्टियों से हितकर है। ये सरिताएँ मातृवत् पालन करती हैं। ऋग्वेद में (नदी सूक्त) नदी की प्रशस्ति विद्यमान हैं। आज भी अनेक धार्मिक पुरुष स्नान करते समय कई नदियों का नाम-स्मरण करते रहते हैं।

(गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरि, जलेऽस्मिन् सन्निधं कुरु ॥)

लोक-गीतों का सौन्दर्य सरिता-वर्णन से तो मानो निखर गया है। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा आदि कुछ नदियाँ तो ऐसी पूज्य हैं, जिनका महत्व सर्वत्र मान्य है, अतः इनकी गरिमा सम्पूर्ण जन-पदों के गीतों में गाई गई है। कुछ नदियाँ प्रान्त-विशेष की हैं, इसलिए उनका गुणगान सम्बन्वित लोक-साहित्य में ही हुआ है।

बुन्देलखण्ड की सुषमा-वर्णन में कविवर घासीरामजी ब्यास ने कतिपय सौरिताओं का आलङ्कारिक रूप में इस प्रकार उल्लेख किया है:—

जांके शीश जमुन डुलावैं चौंर मोदमान,
नर्मदा पखारैं पाद-पद्म पुष्य लेखो है।
कटि कलकेन किंकिणी-सी कलधौह कांति,
बेतवा विशाल मुक्त-माल सम लेखी है।
ब्यास कहै सो है सीस-फूल सम पुस्पावलि,
पायजेब पावन पयस्विनी परेखी हैं।
ए हो शशि! साँची कहो, साँची कहो, साँची कहो,
दिव्यभूमि ऐसी दुनी और कहूँ देखी है।

बघेली गीतों में गङ्गा-यमुना के साथ नर्मदा, सोन, तथा कपिलधारा का नाम प्रायः आता है।

किसी युवती के गोरे गाल पर तिल को देखकर लोक-कवि ईसुरी ने यमुना-जल की याद की थी :—

'तिलकी तिलन परन सें हलकी, बायें गाल पै झलकी।
कै मकरन्द फूल पंकज पै उड़ बैठन भई अलि की।
कै चू गई चन्द के ऊपर बिन्दी जमुना जल की।
ऐसी लगी 'ईसुरी' दिल में कर गई काट कतल की।

श्री गङ्गाधर राधिका की काली पटियों की तुलना यमुना के युगल रूप से करते हुए लिखते हैं :—

'शोभा पटियन की का कानें, समुझ मनइमन रानें।
जैसे चन्द्र खिलो पूनेकौ, श्याम चन्देवा तानें।
ज्यों जुग रूप धरे जमुना ने, मिलत गङ्ग के लानें।
जैसे तनक कनक कसवें खाँ, जुगल कसौटी चानें।
गङ्गाधर ब्रजराज देख छवि, तनकी दशा भुलानें।'

गङ्गा तथा यमुना का उल्लेख धार्मिक महत्व के कारण शिष्ट तथा लोक-साहित्य में आदि काल से होता आ रहा है। निम्नस्थ बुन्देली फाग में गंगावतरण की कथा की ओर संकेत है।

भागीरथ ने तप कियौ, ब्रह्मा ने वर दीन।
गंगा ल्याये स्वर्ग सें, लए पाप सब छीन।
जग के अघ काटन कों आई, जय श्री गंगामाई।
गऊ मुख से धार है, निकरी अपार।
तिन लई निहार, नर सुखकारी।
आई हरद्वार, सब फोरत पहार।
भओ जै जैकार, अघ कर छारो।

भजलो गंगामाई।

पुत्र प्राप्ति के लिए यमुना-स्नान को साधन बताती हुई ननद कहती है :—

"कैसी भौजी मूरख अजान, ललन मोल न मिलें महाराज,
जमना के करो असनान, चरइअन चुन डारो महाराज।'

श्री कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में यमुना का विशद वर्णन मिलता है।

कनैया जमना में कूद पड़े,
बिहारी जमना में कूद पड़े।

पाप-विनाशिनी के रूप में गंगा का महत्व बताया गया है :—

सपर लेओ काशी जू की झिरियाँ रे............
कासी जू की झिरियाँ कट जै हैं जनम के पाप रे
सपर लेव हो........

सीमा-निर्धारण में नदियों का उल्लेख एक लोक-कवि ने यों किया है :—

इत जमना उत नरवदा, इत चंवल उत तोंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू होंस।

जामिन के रूप में भी गंगा का निर्देश मिलता है :—

हर हर तरां तुमारे ऊपर, तबियत भरी हमारी।
तुलसी गंगा जामिन जाकी, जनम जिंदगी हारी।

छत्तीसगढ़ी गीत में देवी गंगा की स्तुति इस प्रकार की गई है :—

देवी गङ्गा, देवी गङ्गा लहर तुरङ्गा।
तोरे भोजल बिन, नाहि आठो अङ्गा।
तहीं गङ्गा, तहीं जमुना, लहर तरङ्गा। ...
तहीं सुख-सागर, तहीं धर्म गीता।
तहीं गौरी माता, तहीं सती सीता।

बघेलखंड के आदिवासी युवक ने एक बार गाया था।

मइया कुआँरो है राम।
लीला अपरिम्पार मैया कुआँरी।

अमर कंटक से निकरै मैया, दौड़े झाड़ पहाड़।
कपिल धार मा जाए के बहगे।
दूध कै धार।

निम्नलिखित गीत-पंक्तियों में कोइल नदी का नाम मिलता हैं :—

राई रतनपुर मय केरे, गढ़ लंका ससुरार।
बीचे मा बहिगा कोइल के नदी बहै जल धार।
मैं तो भूतल हौरे।

भगवान राम के भजन में सरजू नदी का स्मरण हो ही आता है—

राम नगरिया राम की, बसै सुरजू के तीरा।
अटल राज महाराज को, चौकी हनुमत बीरा।

पन्ना में राई नृत्य करती हुई कुछ युवतियाँ गाती हैं।

'बेतवा की धार'
नइया उलट गई सुजान की।

कहां हो राजा अमान,
धीरज धरैया गुमान के।
गहरी है नदिया धसान,
मटका न लागें दुधार में।
थर थर काँपै सरीर,
बालम बिछुड़ गए राह में।
जमुना होगई स्याम,
विरहा की मारी तड़प गई।
सूखी जमुना की धार,
राधा की अँखिया उलट गई।
काना हो गए हम से दूर,
माता जसोदा को भूल गए।

इन पंक्तियों में बेतवा, धसान तथा यमुना नदियों का उल्लेख पत्थर तोड़ती हुई एक ग्रामीण वधू ने मनचले युवक के प्रति कटु व्यंग्य करते हुए किया था—

'आई रे नदिया बहुत कमती।
तोरे घर मा बिआही का है कै कमती।"

यहाँ नदी जवानी का प्रतीक है।

आध्यात्मिक रूप में सरिता का यह वर्णन अपनी महत्ता रखता है :—

धीरे बहो गंगा तें धीरे बहो।
मोरा पिया उतरइ दे पार।
काहे की तोरी नइया रे।
काहे की करूआरि।
कहाँ तोरा नैया खेवैया।
के धन उतरई पार।
धरम की मोरी नैया रे।
सत्त लागी करुआरि।
सैंयाँ मोरा नैया खिवैया।
हम धन उतरब पार।
धीरे बहो गंगा तें धीरे बहो।

झञ्झर नदिया नाव पुरानी, पवन चले झकझोर।
बीच भंवर मोरी नाव पड़ी है, तुम ही लगाओ पार।
अगम पंथ एक नदी बहतु है, मुर्दा जात बहोरे।
तुलसी के धोखे काठ की नइया, वहीं को पकरिके।
तुलसी पार तो गए रे।

दिवाली के अवसर पर एक अहीर ने झूम कर गाया था—

नदी बिआनी अकरा, ककरा,
जमुना बियानी रेत।
बूढ़ी बियानी दुई दुई बालक,
लोमरी तथोलट पेट॥

संत कबीर की उलटवाँसी की भाँति इन पंक्तियों का अर्थ असामान्य है। इस प्रकार का सरिता-वर्णन बहुत कम मिलता है। लोक-साहित्य प्रेमियों के लिए अहीर का यह गीत मौलिक है। प्रशस्त उपमान के रूप में यह गंगा-यमुना का चित्रण सुन्दर है—

'गंगा अस मोरी मैया, जमुना अस मोर बाप।
चाँद सुरुज अस मैया, जिन सुधि लई है हमारी।

प्रेम—बाधा के रूप में सीता का चित्रण लोक गीतों में सुलभता से प्राप्त हो जाता है :—

एँह पार में धोमन धोऊँ,
ओंह पार पंछी नहाँय।
बीच से बह गई पापी नदिया,
कइ से मिलना होय।

माता-पिता के प्यार के परिमाण-प्रकाशन के लिये नदी, सागर, ताल की कल्पना करके लोक-कवि ने अपनी अनुभूति का सुन्दर परिचय दिया हैं :—

'माता के रोयँ रोयँ नदिया भरत हैं।
पिता के रोयं सागर ताल मोरे लाल।

यमुना को संकेत-स्थल के रूप में वर्णित करके लोक-कवियों ने अपनी सरसता का परिचय खूब दिया है :—

हमें तुम बंसीवारे जमुना पै मिल जइयो।
सूरत बिसरत नहीं तुम्हारी।
प्यारे हमको स्याम मुरारी।
ऐसी लगी प्रीत अतिप्यारी।
तुमरी सूरत की बलिहारी।
हमको नाथ आपने दिल में दासी जानें रहियो।
हमें तुम...............

लोक-गीतों का जन्म प्रकृति की गोद में हुआ है। प्राकृतिक शोभा से पुलकित ग्रामीण का हृदय जब उल्लास को प्रकट करने लगता है, तब उसके

सरस मानस से भी गीत अनायास ही निकलते हैं। सरिताओं का वर्णन प्रकृति के उपकरण रूप सबसे अधिक मिलता है :—

"ऊंचे गुरुज को बैठनों तरें गंगा लहरायें,
तुम्हारी कला न बरनी जाय।"
नदिया किनारे बेला किन बोए,
कोने लगाए अनार।
कीने पाली काली कोइलिया,
जिन मोरे राजा भरमाए।
"नदिया के तीरें" उरदा बोवा बोरे,.........
नदिया के तीरें बैला लै गयो।.........
"नदिया के तीर-तीर गुड़रू बसरे रे,
साजन रूखा घास घेरे मालिन धिया पानी लेवै जाय।.........
(अरे हाँ रे) नदिया बेता[1] की बाढ़त आवै,
उतसें बढ़ी धसान।
"जमुना जी के तट पर मोहन बीन बजीरे बजी।"

सरिता का मानवीकरण-स्वरूप बहुत ही प्रिय लगता है। जीवन भरी नदी जब स्वजाति की ललना के आँसू पोंछती है तब कौन ऐसा मानव है जो उसकी सहानुभूति पर विमुग्ध न हो। गंगा के तट पर एक स्त्री रो रही है। वह डूब मरना चाहती है।

गंगा पूछती है—"क्यों तू इतनी विकल है? क्या तुझे तेरी सास अथवा ननद कष्ट देती है अथवा तेरा मायका दूर है? क्या तेरा पति परदेस में है? बेटी! बता तो सही तू किस दुःख से दुखी होकर डूबना चाहती है?"

स्त्री उत्तर देती है—"न मुझे सास ने दुःख दिया है, न मुझे ससुर से कष्ट है। न मेरा मायका दूर है। न मेरे पति विदेश में हैं। मेरी गोद सूनी है। बस इसी से मैं जीवन समाप्त करना चाहती हूँ।"

गंगा नारी की मानसिक व्यथा समझ जाती है, और कहती है—"मोतियों

१ बेता—बेतवा।

से भरे हुए थाल में नारियल रख और उगते हुए सूर्य भगवान की पूजा कर वे तुझे पुत्र देंगे।"

'थरि भरि लइल्या मोतिया, उपर धरा नरियर,
उगतइ का सुरिज मनावा, सुरिज लाल दइहीं हो।"

इसी प्रकार गङ्गा-तट पर खड़ी हुई एक युवती पूछती है :—

"सात गङ्गा रे निर्मल बहरे, बहै कधैंहिला नीर।
की तोही मछरी बिलोरी, की तोरी घसी कगार ?"

गङ्गा उत्तर देती है :—

"ना रे मोहीं मछरी विलोरी, ना मोरी घसी है कगार।
उतरे पाण्डव पार भे, बड़ि तरें डारों है मिलान।
अपने-अपने ओसरें, सब भूलें बरा की डार।"

इस प्रकार का मनोरम मानवत्व सरिता में है, जिसका विकास हमें लोक-गीतों में ही प्राप्त है। अन्यत्र मिलना कठिन है।

निम्नस्थ विवाह-गीत में अनेक पवित्र सरिताओं के जल परोसने का उल्लेख हुआ है :—

"गङ्गा जल जमुना जल परसौ, नदी नरवदा को जलु परसौ।
सरजू का जलु सब कै परसौ, सिंध सरसुती को जलु परसौ।
काबेरी कृश्ना जलु परसौ, मानसरोवर को जलु परसौं।
नदी गम्भीरी को जलु परसौ, फलगू महानदी को परसौ।
ठण्डे जल सब ही के परसौ, हा हा करि-करि सबके परसौ।

इस प्रकार ग्राम-गीतों में वर्णित कूप-सर-सरिताएँ विश्व को जल प्रदान करके जीवन-शक्ति में नवलता भरती रहती हैं।[1]

---

१ कविता-कौमुदी–तीसरा भाग पृ० ४५२

लोक-काव्य में ग्राम

ग्राम ही राष्ट्र का प्राण है। — महात्मा गान्धी

गाँव हमारे अन्नदाता हैं। इनके ही सहारे आज संसार अपना पेट भर रहा है और अपनी जीवन-यात्रा पर चल रहा है। हमारी भारतीय सभ्यता के पुनीत स्मारक ये गाँव ही हैं। पवित्र संस्कृतियाँ इन गाँवों में ही अपना अस्तित्व बनाए रखे हैं। प्रकृति के सलोने चित्र हमें गाँवों में ही मिलते हैं। जीवन का आदर्श फूल बन कर गाँवों में ही महकता है। धरती माता की उदारता और महानता हमें गाँवों में ही मिलती है। उर्वरा भूमि की सोंधी-सोंधी सुगन्ध गाँवों में ही प्राप्त होती है। सच्ची मिट्टी के जीवित भगवान मन्दिरों में नहीं हैं, किन्तु गाँवों के खेतों की मेड़ों पर ही हमें मिलते हैं। भारतमाता का शस्य-श्यामला रूप गाँवों में ही खिल रहा है। जब विश्व विकल होता है तब उसे गाँवों में ही शान्ति मिलती है। गेहूँ के सुनहले खेत, वृक्षों की हरियाली, सुन्दर तालों की लहरें, बल खाती हुई गोरियों के गीत, गायों का रँभाना, पक्षियों की सुन्दर बोलियाँ, बखर के साथ विरहा गाते हुए किसान, फुदकते हुए गाय-बकरियों के बच्चे, पिल्लों के साथ बातें करते हुए भोले बालक, चरखा चलाती हुई बूढ़ी दादियाँ, धान कूटती हुई नव-युवतियाँ, सिर पर घास का गट्ठा रखे हुए और झूमती हुई व्याहिताएँ, पनघट पर अपने सासों के दुखड़े को सिसक-सिसक कर बतलाने वाली वधुएँ, अधूरे प्यार पर मचलने वाले छबीले छैला आदि सब कुछ आपको गाँव में ही मिलेंगे। शहर की विषैली गन्दगी से दूर ये हमारे गाँव सचमुच शक्तिदाता और त्राता हैं। न यहाँ बदमाश हैं और न बेईमान। न यहाँ कुटिलता है और न दासता। न यहाँ फौजदारी है और न दीवानी। यहाँ मनुजता है और इसीलिए यहाँ के रहने वाले सच्चे मनुष्य हैं और एक दूसरे के मित्र हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त की निम्नस्थ पंक्तियाँ ग्राम-जीवन के विषय में कितनी सच्ची हैं :—

अहह ग्राम जीवन भी क्या है,
क्यों न यहाँ सबका जी चाहे।
थोड़े में निर्वाह यहाँ है,
ऐसी सुविधा और कहाँ है ?
मरे फौजदारी की नानी,
दीवाना करती दीवानी।
यहाँ गठकटे चोर नहीं है,
तरह तरह के शोर नहीं हैं।
सब कामों में हित से लेकर,
पति की अति सहायता देकर।
गुदना गुदे हुए हैं तन में,
भरी सरलता है चितवन में।
थोड़े मे गहने पहने हैं,
क्या सब आपस में बहने हैं।
बात बात में अड़ने वाली,
गहनों के हित लड़ने वाली।
दिखलाने वालीं दुर्गतियाँ,
है न यहाँ ऐसी श्रीमतियाँ।

शहरों की शोभा हमारे गाँव ही बढ़ा रहे हैं। कल-कारखाने गाँवों की वदोलत चल रहे हैं। हमारा पूरा हिन्दुस्तान गांव पर ही खड़ा है। सच बात तो यह है कि हमारे भारत की आत्मा गाँव ही हैं। मन्दिर में भगवान का भोग गाँव से ही लगता है। यह महान आकाश गाँवों की हरियाली से ही हरा है। सेठ-साहूकारों की तिजोड़ियाँ गाँवों से आए हुए धन से ही भरी हैं। कवि और कलाकार गाँव की रोटी खाकर ही जीवित हैं। अन्नरूप भगवान का जन्म गाँव की धरती में ही हुआ है। परमेश्वर राम गाँव में ही उत्पन्न हुए थे। भगवान कृष्ण को गाँव में ही बल-पौरुष प्राप्त हुआ था। संसार के महापुरुष गाँव की धूल में ही खेले और बड़े हुए। कौन कहता है कि गाँव बुरे हैं ? जिसे गाँव प्यारे नहीं हैं, वह सच्चा मनुष्य नहीं है।

जिसको प्यारे गाँव नहीं हैं,
जिसे धाम से प्यार नहीं है।
वह मानव दानव कहलाता,
उसका यह संसार नहीं है।

ग्रामों की मिट्टी में पलकर,
रामचन्द्र बलधाम बने थे।
ग्रामों की गलियों में फिर कर,
मुरलीधर घनश्याम बने थे। [चन्द्र]

शहर पतन की ओर जा रहे हैं। इनमें विलासिता की बदबू आरही है। असलियत से दूर भागते हुए ये शहर यद्यपि बिजली की चमकती हुई रोशनी से जगमगा रहे हैं फिर भी इनको पाप का अन्धकार ढक रहा है। गाँव की प्रशंसा में यह कविता कितनी सुन्दर है :—

'सब सें नौंने[१] गाँव हमारे।

+ + +

१

धरम करम की लीक यहाँ है,
लाज सरम की सीक[२] यहाँ है।
जो कैंदें[३] सो बात सही है,
आस पास की घात नहीं है।
कोउ न हमसे रातें[४] न्यारे।

२

हम ही राजा हम हीं परजा,
हमें न लैनें काउ से करजा।
सब के दुख में हम दुखिया है।
सबके सुख में हम सुखिया हैं।

---

१ अच्छे, २ शिक्षा, ३ कहदें, ४ रहते।

हमारे साथी नदिया नारे।
सब सें नौंने गाँव हमारे।।

धरती हरी हरी हरयारी।
कोउ न राजा, राव, भिखारी।
खुश है मोहन की महतारी,
खुश है लल्ला की घरवारी।

हम काऊ सें कबहुँ न हारे।
सब सें नौंने गाँव हमारे।

४

सस्तो नाज यहाँ भारो है।
घर-घर में सब सें यारी है।
खेती सम्पत खेती मइया।
कोउ न हमरवाँ आँख दिखैया।

मोड़ा[1] मोड़ी हमरवाँ प्यारे।
सब सै नौंनें गाँव हमारे।

५

दूध पूत से हम सुखिया हैं।
हम अपने घर के मुखिया हैं।
खेती है रुजगार हमारो।
अन्न देवता हमरवाँ प्यारो।

हमनें कबहुँ न हाथ पसारे।
सबसे नौंनें गाँव हमारे।

---

१ लड़का-लड़की (पुत्र-पुत्री)

६

महुआ खावें चना चबावें।
फाग और रमटेरा गावें।
मन की सब में बात बतावें।
सब की भैया खैर मनावें।

राम हमारे हैं रखवारे।
सब से नौनें गाँव हमारे।

गाँव में अनेक आकर्षण हैं। हमारे कवियों ने ग्राम्य जीवन को अपनी साधना का लक्ष्य बना कर बहुत कुछ इस सम्बन्ध में लिखा है। शाम का समय है जङ्गल से चरकर पशु गाँव की ओर आ रहे हैं। गाँयों के थन दूध से भरे हुए हैं। वे रँभाती हुई अपने बछड़ों को पास बुला रही हैं:—

सांझ हुई गौएँ घर लौटीं।
दिन भर जङ्गल में तृण चरकर,
सुन ग्वाले की वंशी के स्वर,
ममता-वश रांभती हुई
नव दूध थनों में भर कर लौटी....

(शंभुनाथ शेष)

आई गोधूलि की वेला,
चरवाहे पशुओं को लेकर,
चले गाँव की ओर डगर पर
देख मुदित मन मना रहे हैं
बाल वृन्द जीवन का मेला।

(देवराज दिनेश)

गाँवों में पनघट का दृश्य बड़ा ही सुन्दर होता है। किशोरियाँ और युवतियाँ पनघट पर बैठ कर न जानें कहाँ-कहाँ की बातें किया करती हैं। लड़कियाँ अपने सुनहले भविष्य के विचार में मग्न हो जाती हैं और सुहागिनें अपने सौभाग्य की चर्चा कजरारी आँखों से बहते हुए आँसुओं के साथ करती हुई थकती नहीं है:—

पानी भरने की वेला है, कूओं पर अब भी मेला है।
कुछ किशोरियाँ चली कूप को, कुछ सुहागिन जल भर लौटीं।
खेतों वाले गाते आते,
तीखी तानें खण्डहर में घिर गूँजी काँपो उर डर।
साँझ हुई गौएँ घर लौटी। (शंभुनाथ शेष)
पनघट पर बैठी पनहारिन, गाए दुख का गीत।
चला गया कोई बनजारा, दिल की दुनिया जीत।
(देवराज दिनेश)

बुन्देलखण्ड के लोक-कवि ईसुरी सलोनी अहीरिन को कूएँ पर पानी खींचते हुए देख कर कई वार प्रसन्न हुए थे। इनके द्वारा चित्रित पनघट का चित्र मौलिक है। शहरों में ये दृश्य देखने को मिलते ही नहीं हैं :—

'देखी पनिहारिन की भीरें, कुआँ गाँव के नीरें।
ऐसी घनी आउतीं जातीं, गैल मिलै ना चीरें।
दो दो जनी एक ज्योरा सें, घड़ा एँचती धीरें।
'ईसुर' ऐसी देखीं हमने, दई की खाइँ अहीरें।

वृक्ष हमारे गाँव की शोभा हैं। नीम का पेड़ बड़ा सुहावना लगता है। इसकी शीतल छाया बड़ी सुखदाई होती है। नीम से प्रभावित प्रसिद्ध कवि नरेन्द्र शर्मा अपने जीवन की इस से तुलना करते हुए कहते हैं :—

एक वह तरु नीम मुझसा ही अकेला,
खड़ा है जो सामने,
पत्तियों से बौर से सब,
झर गया तब खुश हुआ मन,
बौर की मधु गन्ध फैली,
झर गए ज्यों जीर्ण बन्धन,

एक मैं हूँ रूखता तन और मन में,
छलकती छल व्यथा, भर दी राम ने।

नीम क्या, रवि से बड़ा कवि
पर कहाँ अब वह, कहाँ मैं,
नीम जड़, मैं मनुज चेतन
उठ रहा वह गिर रहा मैं।

प्रातःकालीन सूर्य की सुनहली किरणों से ग्राम चमचमा रहा है। हमारे कविवर पन्त के शब्दों में प्रातःकालीन ग्राम की शोभा साकार बन गई है :—

मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम
जिस पर नीलम नभ आच्छादन,
निरुपम हिमांत में स्निग्ध शांत,
निज शोभा से हरता जन-मन।

राजस्थान का एक आत्म-विश्वासी गाँव-निवासी किसान अपनी सीमित मस्ती में मस्त है। वह अपने छोटे से परिवार में इतना सुखी है कि भगवान कृष्ण को भी दो खरी-खोटी सुनाता है :—

बनवारी हो लाल कोन्यां थारे सारे,
गिरधारी हो लाल कोन्यां थारे सारे। टेक।

अै महल मालिया थारै, थारी बरोबरी म्हे करास,
कोई टूटी टपरी म्हारे।

अै काम धेनवाँ थारे, थारी बरोबरी म्हे कराँस,
कोई भैंस पाडड़ी म्हारे।

अै हाथी घोड़ा थारे, थारी बरोबरी म्हे कराँस,
कोई ऊँट-टोडड़ा म्हारे।

अै भाला बरछी थारे, थारी बरोबरी म्हे कराँस,
कोई जेली गंडासी म्हारे।

अै रतनागर सागर थारे, थारी बरोबरी म्हे कराँस,
कोई ढाब भरया है म्हारे।

अै तोकस तकिया थारे थारी बरोबरी म्हे करांस,
कोई फटी गुदड़ी म्हारे।
आ राधा-राणी थारे, थारी बरोबरी म्हे करांस,
कोई एक जाटणी म्हारे।
गिरधारी हो लाल कोन्याँ थारे सारे।

भावार्थ—हे बनवारी, हे गिरधारी तुम चाहे कितने ही बड़े हो, मैं अब तुम्हारे वश में नहीं हूँ।

तुम्हारे महल हैं पर मेरी झोपड़ी भी उस से कम नहीं है, क्योंकि मैं संतोष से उसमें रहता हूँ।

तुम्हारे काम धेनु है तो मेरे पास भैंस-गाय आदि हैं। तुम्हारे हाथी-घोड़े हैं—मेरे ऊँट-बैल।

तुम्हारे पास भाले-बरछे आदि शस्त्र हैं तो मैं अपनो जेल, गंडासा से ही प्रसन्न हूँ।

तुम रत्नाकर सागर में सोते हो तो मेरे गाँव में पानी की भरी तलैया हैं।

तुम्हारे कीमती तोशक-तकिये आदि सौख्य का सामान है तो मैं अपनी फटी गुदड़ी में ही मस्त हूँ। तुम्हारे राधा रानी और रानियाँ भी हैं, पर मैं तो एक जाटनी से ही सन्तुष्ट हूँ।[१]

गाँव प्रकृति देवी की गोद में बसे हुए हैं। वसन्त ऋतु में ये हमारे गांव बड़े ही सुहावने लगते हैं। कोयलिया की कूक, आम के बौर की भीनी सुगन्धि, पलाश का फूलना, धना का पुष्पित होना, एवं सरसों की उभरती जवानी गाँव वालों को मस्त बना देती हैं:—

सखि! आई बसन्त बहार, अँगन में फूलो धना।
बोली कोयल ताल के पार, सुन-सुन डोले मना।
बौरन आई आम की डार छबेलो फूलो धना।
सरसों फूली दूर के हार, बेरन पूरे बना।
नहीं आये सजन भरतार, बिकल मेरौ होवै मना।

(श्री वंशीधर)

---

१ राजस्थानी लोक गीत (सूर्यकरण पारीक, एम० ए०) पृ० ८५–८६

चने का ठिगना पौधा सब ने देखा है। सरसों के फूल किस को पसन्द नहीं हैं ? खेत की मेढ़ों पर मानव-मन कई वार खड़ा हो चुका है। झूमती अलसी को देख कर कवि का रसिक हृदय भी प्रणय भार से शिथिल हो उठता है। खेत में प्रणय-बन्धन को देखना प्रकृति-प्रेम का मौलिक सरस एवं भावुक चित्रण हैं :—

एक बीते के बराबर,
यह हरा ठिगना चना।
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है।
पास ही मिलकर उगी है,
बीच में अलसी हठीली—
देह की पतली, कमर की है लचीली,
नील फूले फूल को सिर पर चढ़ा कर,
कह रही है
जो छुए यह,
दूँ हृदय का दान उसको।
और
सरसों की न पूछो!
हो गई सब से सयानी!
हाथ पीले कर लिए हैं
ब्याह मंडप में पधारी,
फाग गाता मास फागुन,
आगया हो पास जैसे!
देखता हूँ मैं स्वयंवर हो रहा है।

—केदारनाथ अग्रवाल

ग्राम चेतना के प्रतीक हैं। यहाँ का हलधर किसान अपने जीवन से सबको जीवन-दान कर रहा है :—

'जीवनदायी ग्राम,
मैदानों में,
खलिहानों में
दालानों में,
वीरानों में,
श्रमिक देवता धन उपजाते—
देते आठों याम।
जीवनदायी ग्राम ।।' (श्री बद्रीनारायण शर्मा)

ग्राम की पृथिवी पवित्र है। इस पर न कोई शापित है और न कोई तापित :—

"शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है ।।"
(कामायनी)

युवको ! तुम्हारे जीवन का विकास-केन्द्र ग्राम है। यहीं आकर तुम्हारी शक्ति और कर्मठता विश्वास का पाठ सीखेगी। हमारे बापू ग्राम को स्वर्ग बनाना चाहते थे। पूज्य सन्त विनोबा आज गाँवों की महानता को नए संस्कार दे रहे हैं। ग्राम-वासिनी भारत माता आज तुम्हें ग्रामों की ओर बुला रही है :—

"ग्राम वासिनी भारतमाता, बुला रही ग्रामों की ओर।
जहाँ स्नेह की वंशी बजती, जहाँ नाचते मन के मोर ।।"
जहाँ न नगरों का कोलाहल,
मुक्त पवन का जहाँ निकेत।
जहाँ नहीं है प्रतिपल हलचल—
जहाँ न विग्रह का संकेत।
जहाँ न छलना बाँधा करती, ललना बन कर माया डोर—
ग्राम वासिनी भारतमाता, बुला रही ग्रामों की ओर ।।
जहाँ स्नेह की शीतल छाया।
जहाँ दूध की बहती धार।
जहाँ नहीं बहकती माया—
जहाँ न छल-बल की तलवार।

जहाँ लोरियाँ रात सुनाती, जहाँ प्रभाती गाती भोर।
ग्राम-वासिनी भारतमाता, बुला रही ग्रामों की ओर॥

(श्री सरस्वतीकुमार 'दीपक')
ग्राम-सुधार ७ मार्च १९५७

ग्राम-जीवन इतना पवित्र और सुखदायी है कि इसे भगवान राम और लक्ष्मण ने भी अपनाया था। भगवती सीता ने कृषि-कार्य की ओर आकर्षित होकर ससार के सामने एक नया आदर्श उपस्थित किया था। निम्नस्थ बुन्देली लोक-गीत त्रिमूर्ति के नामों से पवित्र हो गया है :—

"राम बवें तो लछमन जोतिओ।
सीता माता काढ़े कांद।
लछमन दिउरा लौट के हेरिओ,
मेरी बारी दो दो कान—
राम बीज बोते हैं, लक्ष्मण हल चलाते हैं।
सीता माता निराई करती हैं,
लक्ष्मण देवर लौट कर देखो,
मेरे खेत में दो दो अङ्कुर निकल आए हैं।

अङ्गरेजी शासन ने हमारे ग्रामों को दरिद्र बनाया और सब प्रकार से इन्हें बरबाद किया। उस समय ग्राम-वासिनी भारतमाता क्षुधित, असभ्य, अशिक्षित और शोषित बनी :—

भारतमाता
ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला सा आँचल,
गङ्गा-यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा।
उदासिनी,
तीस कोटि सन्तान नग्न तन,
अर्द्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त जन,
मूढ़, असभ्य अशिक्षित, निर्धन,

नत मस्तक
तरु तल निवासिनी। (कविवर पन्त)

यह बात सत्य है कि किसानों ने अनेक प्रकार के कष्ट सहे। उन्होंने नारकीय दुःखों को भोगा। संसार ने कृषि-कर्म की निन्दा की, लेकिन धन्य है ये ग्राम-निवासी, जिन्होंने धरती माता से मोह न छोड़ा। कृषि-निन्दा पाप है। खेती की निन्दा भारतमाता की निन्दा है :—

"पाया हमने प्रभो कौन सा त्रास नहीं है ?
क्या अब भी परिपूर्ण हमारा ह्रास नहीं है ?
मिला हमें क्या यहीं नरक का वास नहीं है ?
विष खाने को हाय टका भी पास नहीं है।
कृषि निन्दक मरजाय अभी यदि हो वह जीता।
पर वह गौरव, समय कभी का है अब बीता।
(राष्ट्रकवि गुप्त)

अब समय बदल चुका है। आज गाँवों में मंगल है। हमारी नेहरू सरकार ने ग्रामों के जीवन में एक महान परिवर्तन कर दिया है। श्रम की गंगा ने ग्रामों में बहकर नव निर्माण के खेतों को सींच दिया है। आज उदार नेहरू सरकार की दोनों भुजाएं ग्रामों को धन-वैभव से सम्पन्न बना रही हैं। जब तक गाँव सुख-समृद्धि के केन्द्र न बनेंगे तब तक कर्मठ नेहरू सरकार आराम न करेगी।

शहर की नकली शोभा से आकर्षित होकर आज हमारे युवक गाँव छोड़कर नगर की ओर दौड़ रहे हैं। श्रम से भयभीत होने वाले ऐसे युवकों को श्री रमई काका की निम्नस्थ पंक्तियों में एक सच्चा उपदेश है:—

गाँव छोंड़ि कै चल्यो नगर का,
धरती तुमको टेरि रही है।
विसरि न जायो भुइयाँ देवी, जहि कै धूरि अंग लपिटायो।
खेलि कूदि कै कुलकि कुलकि कै, जहि की गोदी मोद बढ़ायो।
पुरिखन केई ख्यात न विसरयो अन्न देव कै दीरघ दाया।
जिनका रकतु नसन माँ व्यापा, रिनियाँ जिन कै कंचन काया।

जिनके मधुरे फल खायो है, बैठि सीतली छाँह जुड़ायो।
ब्यार आँव अँवरूद अँविलिया, कइथा जमुनी बिसरि न जाओ।
अँगवा कै निबिया तुम तन उचकि उचकि कै हेरि रही है।
धरती तुम का टेरि रही है।

(काव्य-धारा संख्या १ पृ० १७१)

भारतीयता के अमर चिह्न ये हमारे गाँव सुख-शान्ति के परम पुनीत केन्द्र हैं। गाँव से प्रेम करने वाला ही मनुष्य सच्चा भारतीय है। हमारा भारतवर्ष ग्रामों का ही देश है। ग्राम-देवता की पूजा ही विश्व देवता की आराधना है। स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर हमारे गाँव हैं। वे प्रेम-निकेतन हैं और आदि सभ्यता के इतिहास हैं। (चंद्र)

गाँव हमारे नव जीवन के स्रोत हैं।
धन-वैभव से भरे शान्ति के पोत हैं।
कपट, कलह ईर्ष्या पाप पाखण्ड मुक्त–
सदन शुचि सुधा के, शान्ति सारल्य धाम-
नित्त चित्त किसके ये मोहते हैं न ग्राम।

(श्री० लोचनप्रसाद पांडेय)

मानवता का प्रेम निकेतन, आदि सभ्यता का इतिहास।
भ्रातृ प्रेम समता क्षमता का, तू है अवनी में अधिवास।

(ठाकुर गोपालशरणसिंह)

तथा शूद्र जन प्राया सुसमृद्ध कृषीवला।
क्षेत्रोपयोग भूमध्ये, वसति ग्राम संज्ञिका।

(मार्कण्डेय पुराण)

गांव उसी बस्ती का नाम है जिसमें मेहनत-मजूरी करने वाले और सब जरूरत की वस्तुओं से रंजे-पुंजे खेतिहर रहते हो, और जिसके चारों ओर खेती करने के लायक धरती हो। (हमारे गाँव की कहानी)

(श्री रामदास गौड़)

मध्य-प्रदेश के आदिवासियों के ये रसीले नृत्य

[लेखक— प्रो० श्रीचन्द्र जैन, एम० ए०]

नृत्य, मानव-हृदय के उल्लास का सुगमतम प्रकाशन है। आनन्द की पराकाष्ठा ही नृत्य है। सजल मेघों को देखकर कौन नहीं प्रमुदित होता ? इठलाती हुई सरिताओं की मंद-गति पर रसिक-मन गुन गुनाने लगता है। झूमते हुए कमलों और पुष्पों की अदाओं पर पक्षियों का दल थिरकने लगता है। मधुकर गुंजारों से उन्मत्त हो जाता है और पुलकित पवन अठखेलियाँ करने लगता है। इन सब में नृत्य की ही भावना समाहित है। विश्व-व्यापिनी प्रकृति का सम्पूर्ण जीवन नृत्यमय है। प्राकृतिक सुषमा का संपर्क जड़-चेतन को संगीत और नृत्य की सम्मोहक शक्ति से आकर्षित कर लेता है। इसीलिए प्रकृति नटी ही हमारी नृत्य कला की अधिष्ठात्री है।

नृत्य कला अति प्राचीन है। वेदों में भी इसका अनेक रूपों में उल्लेख हुआ है।[1] भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अध्ययन में नृत्य का विशेष योग है। देव-पूजन की आदि व्यवस्था में नृत्य को जो महत्व प्राप्त है वह सर्व विदित है। देवांगनाओं की नृत्य लीला तपोधन ऋषियों की पुरातन कथाओं के साथ संवद्ध है।

हमारे आदिवासी प्रकृति देवी के लाड़ले हैं। ये स्वभाव से स्वच्छन्द हैं और बड़े रसीले हैं। ये जीवन की व्याख्या में आनन्द को ही प्रधानता देते हैं। ये अपने नृत्य और संगीत में संसार की विषमताओं को पल भर में भूल जाते हैं। इनके नाच में स्वाभाविकता है और जीवन की सहजता-सरलता है। वाद्ययंत्र भी साधारण हैं।" आदिवासी गाने-नाचने में ढोलकी, मृदंग, या मांदर, डफला, झांझ, करताल, सोखौ, बनम, टुहिला, बांसुरी, मुरली, ठेस्का, और घुंघरू

1 Indian Dancing-By Ramgopal.

आदि काम में लाते हैं। इन बाजों को लोग हाथों से या लकड़ी के डंडे से दनादन पीटकर, या फूक कर बजाते हैं। अखाड़े में कहीं मांदर बजा कि जोरी लग गई और कतार की कतार नर्तकियाँ टपक पड़ीं और लगे सलौने पैर थिरकने। कहीं ढुलकी ठनकी कि देखो छैल-छबीलों की ठेला-ठेली ! मुरली-बाँसुरी की तो कौन कहे उनकी तानें जब छिड़ती हैं रस-पिपासु मन मसोस कर रह जाते हैं।[1]

आदि वासियों के नृत्यों के अनेकप्रकार हैं। उनके गीत नृत्यों पर आधारित कहे जायँ तो ठीक है। जितने उनके गीत हैं उतने ही उनके नृत्य।

सामान्य रूप से इनके ये रसीले नृत्य तीन भागों में विभाजित किए जा सकते हैं :—(१) पुरुष नृत्य जिनमें केवल पुरुष ही भाग लेते हैं जैसे सैला अटारी (२) नारी नृत्य जिनमें केवल नारियाँ ही सम्मिलित होती हैं, जैसे सुआ, रीना और तपाड़ी (३) सम्मिलित नृत्य जिनमें युवक और युवतियां एक साथ नाचती हैं जैसे करमा।

इन नृत्यों के साथ जो गीत गाए जाते हैं वे भी विविध भावनाओं और कामनाओं के द्योतक हैं। मानवीय भावों में प्रेम की प्रधानता है अतः इस सार्वभौम तत्व की छाया रसमय नृत्यों की मौलिक चेतना हैं और प्रबन्ध-कारिणी शक्ति है।

नृत्यों का सामाजिक तथा ऋतु विषयक रूप से भी विभाजन किया जाता है। लेकिन आदिवासियों के नृत्यों का ऐसा वर्गीकरण कुछ कठिन प्रतीत होता है। अपने परिमित जीवन के अवकाश-क्षणों में सन्तोषी मानव जब चाहते हैं तभी नृत्यरत होकर वाञ्छित नाच का अभिनय करने लगते हैं। कहा जाता है कि लोकनृत्य अशिक्षितों का नाच है जिसमें कलात्मकता का अभाव है, परन्तु यह कथन पूर्णरूपेण सत्य नहीं है।

जिस प्रकार साहित्यिक गीतों को सुन्दर भाव और शब्द लोक-गीतों से प्राप्त हुए हैं उसी प्रकार शास्त्रीय नृत्य की कला-पूर्णता में लोक नृत्यों का आभार

१. आदिवासी संगीत और नृत्य—रेवरेण्ड पी. टोपनी एस० जे० (विश्ववाणी दिसम्बर १९४१) पृष्ठ २९६

स्वीकार करना ही पड़ेगा । [1] आदिवासियों के नृत्यों में सामाजिकता है । उनमें उनकी सांस्कृतिक चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति है । सरलता और ऋजुता जितनी हमें इन नाचों में मिलती है उतनी शास्त्रीय नृत्यों में मिलना कठिन है । कानन-निवासी इन आदिवासियों का जीवन संघर्षमय है । कठिनता में सरसता का अनुभव करना ये ही जानते हैं । इसीलिये इनके नृत्यों में वीरत्व और श्रृंगारत्व का विरोधाभासात्मक समन्वय है । शैला नृत्य पौरुष का प्रतीक और करमा एवं सुआ नृत्यों में सुरभित प्रेम की मधुरता मुखरित है । आदिवासियों की नृत्यकला पर यदि गंभीरता से विचार किया जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस पर भगवान् कृष्ण की बहुमुखी लीलाओं का विशेष प्रभाव है । करमा इनका प्रधान नृत्य है । यह वर्ष के अधिपति घनश्याम की पूजा में विशेष रूप से नाचा जाता था । कदम्ब (करम) नामक पेड़ की शाखा को हाथ में लेकर नर्तक इस नृत्य को आज भी करने हैं । कदम्ब की हरीतिमा भगवान मुरलीधर के संसर्ग से पुनीत हुई है । मयूर पंखों को पगड़ी में खोंसकर और घुंघरुओं को छम-छम बजाते हुए जब युवक माँदर के स्वरों में गाते हैं तथा यौवनोन्मत्ताओं के साथ अंगों को मटकाकर नाचते हैं तब हमें वृन्दावन की रासलीला का स्मरण हो आता है । करमा गीतों में कृष्ण नाम की पर्याप्त आवृत्तियाँ होती हैं । मुरलिया वाले की पुकार के साथ आदिवासी प्रौढ़ाएं झूम-झूम कर जब तालिया बजाती हैं और मदभरी कजरारी आँखों से इधर-उधर देखती हैं तब दर्शकों को ब्रजबालाओं की सुखद स्मृतियाँ आनन्द विभोर कर देती हैं । अटारीनृत्य माखनलीला का अभिनय है ।

करमा-नृत्य में कुछ चंचल यौवना युवतियाँ एक ओर खड़ी हो जाती हैं और कतिपय युवक दूसरी ओर खड़े होकर मादर के स्वरों की प्रतीक्षा करने लगते हैं । मादर के ध्वनित होते ही नर्तक और नर्तकियाँ झुक-झुक कर और झूम-झूम कर आगे बढ़ते हैं और पीछे हटते हैं । पगों की द्रुत गति और क्षीण कटि का झुकाव इन सुन्दरियों के लाज भरे मनुहारों को विशेष आकर्षक बना देते हैं । नर्तक एवं नर्तकियों के आंगिक संचरण के आधार पर करमा नृत्य के अनेक भेद किए गए हैं :—

---

१ Folk-Dances of India. (Introduction) Publication Division.

(१) झुलनिया करमा (२) लहकी करमा (३) थाड़ी करमा (४) बैगानी करमा (५) झुमकी करमा (६) बदियानी करमा (७) झरपट करमा आदि।[1]

संभवतः गाए जाने वाले गीतों को ध्यान में रखकर करमा नृत्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूपों में किया गया है :—

(१) खेमटा करमा (२) खेलरी करना (३) पुरवइया करमा (४) सजनीं करमा (५) साजन करमा (६) झूमर करमा ७) सभइया करमा (८) झुमुन खेल करमा (९) विहनहा करमा (१०) विरहा करमा (११) भजनानंदी करमा (१२) बिजोगी करमा (१३) कबीर करमा (१४) कांग्रेसी करमा (१५) जोड़िया करमा (१६) छत्तीसगढ़ी करमा, आदि।

सैला नृत्य—यह युवकों का वीर नृत्य है। इस नाच में गाए जाने वाले गीत—सैला गीत कहे जाते हैं। शुष्क काष्ठ के छोटे-छोटे डंडों से सरस ध्वनि उत्पन्न करते हुए ये युवक एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं फिर गाते-गाते चक्राकार में परिणत होकर नृत्य का अभिनय करते हैं। यह नृत्य अपेक्षाकृत अधिक श्रमसाध्य है। इसमें भाग लेने वाले नौजवान रंग-विरंगे कपड़ों से स्वयं को अलंकृत्र करते हैं और पगड़ियों में विविध पक्षियों के रंगीन परों को (विशेषतः मयूर पंखों को) खोंस लेते हैं।

इस नृत्य के निम्नस्थ भेद मुझे ज्ञात हुए हैं:—लहकी सैला (२) गोदमी सैला (३) डिमरा सैला (४) शिकार सैला (५) बैठकी सैला (६) चमका सैला (७) चक्रमार सैला (८) डंडा सैला आदि। जंगल में चाँदी-सी चाँदनी रात में इस नृत्य को नाचकर आदिवासी युवक अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हैं। गुजरात में यही नृत्य डाण्ड्या रास से प्रसिद्ध है। उत्तर प्रदेश में यह 'चौकचाँदनी' से प्रख्यात है और बुन्देलखण्ड में इसे सैला कहते हैं।

अटारी नृत्य—इसमें युवक ही भाग लेते हैं। एक-एक व्यक्ति के कंधों पर एक-एक युवक खड़ा हो जाता है और फिर अटारी के दृश्य को बनाते हुए ये पद-संचालन के माध्यम से नृत्य-प्रदर्शित करते हैं। मनोरंजन के लिए यह नाच

(१) देखिए :— विन्ध्य प्रदेश के आदिवासियों के गीत :—श्रीचन्द्र जैन (२) विन्ध्यप्रदेश के लोक गीत (करमा)— श्रीचन्द्र जैन।

विशेष रूप से अपनाया जाता है। नट-क्रीड़ा भी भाव इस नृत्य में स्पष्ट है। इस नृत्य में प्रेमाभिनय की भावना का भी संकेत मिल सकता है। मान लीजिए कि छत पर खड़ी हुई कोई विरह विदग्धा युवती अपने प्रेमी को संकेतों से आमंत्रित कर रही है। नारी नृत्यों में कोमलता की प्रधानता रहती है।

रीना और तपाड़ी नृत्यों में—नारियाँ आमने-सामने दो पंक्तियों में होकर नाचती हैं। शनैः शनैः क्रमशः आगे बढ़कर ये सुन्दरियाँ करतल ध्वनि के साथ अपने मनोरम हाव-भावों का प्रदर्शन करती रहती हैं और दाहिनी एवं बायीं तरफ झूमती है। कुछ समय के पश्चात् इन नृत्यों में एक पँक्ति की युवतियाँ अपनी सहेलियों की तरफ पीठ करके खड़ी हो जाती हैं और झुक-झुक कर गाती हुई तालियाँ बजाती हैं। मंद एवं सुरभित समीर से ये पुलकित होकर कभी-कभी झूमने लगती हैं। यों तो रीना और तपाड़ी नृत्यों को दीपावली तथा शीतकाल में (क्रमशः) नाचा जाता है लेकिन विवाहों में भी अब रीना नाचा जाने लगा है। रीना में प्रतिस्पर्धा की भावना विशेष रूप से विद्यमान रहती है। एक ग्राम की युवतियाँ दूसरे ग्राम की सुन्दरियों को अपने नृत्य-कौशल की दक्षता प्रकट करने के लिए बुलाती है। इन नृत्यों के गीत बड़े मादक होते हैं। प्रश्नोत्तर के रूप में जो सरस भावों की अभिव्यक्ति इन स्वरों में होती है, वह हृदय को छू जाती है। शीतकाल की प्रकम्पित रजनियाँ इन नृत्यों से उष्ण बन जाती हैं।

सुआनृत्य की भावना नवीन नहीं है। प्राचीन साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शुक अपनी भावुकता के लिए पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका है। दीपावली की प्रकाशित दीप-पंक्तियों के उल्लसित प्रकाश में सुआ नृत्य अपनी कमनीयता का स्वयं अनुभव करने लगता है। अनाज की भरी हुई टोकरियों में काष्ठ अथवा मृत्तिका से निर्मित तोते को रखकर यह नृत्य किया जाता है। सिरों पर सुशोभित ये टोकरियाँ हमारे धन-धान्य की प्रतीक हैं। कभी-कभी एक थाली में तोते को रखकर उसके चारों ओर घूम-घूमकर नाचती हुई योषिताएँ (स्त्रियाँ) वृत्ताकार हो जाती हैं। अभ्यागत के स्वागतार्थ भी इस नृत्य का आयोजन देखा गया है। अन्नपूर्णा एकादशी के दिन इस नाच को विशेष रूप से नाचा जाता है। नर्तकियाँ व्रत रखती हैं और शाम

को मिट्टी के तोते का पूजन करके कुछ खाती हैं। तत्पश्चात् रंगीन वस्त्रों से शरीर को समलंकृत करके नाचती हैं। धान की बालों से श्याम केशों को सजाती हुईं ये कामिनियाँ अन्नपूर्णा देवी को प्रसन्न करती हैं। कर्णाभूषणों की अभिलाषा-पूर्ति ये आदिवासी मुग्धाएँ पुष्पों एवं धान की बालों से करती हैं। शुक-पूजा में कृतज्ञता का प्रकाशन है। जिस सहृदय पक्षी ने समय-समय पर संदेश लेजा कर विरहिणियों की निकलती हुई साँसों को आशामय बनाया हो उसकी याद कौन नारी भूल सकती है। विवाहोत्सुका कुमारियों के लिए चतुर तोते ही सुयोग्य वरों का अन्वेषण करते हुए आए हैं। अनेक राजकुमारियों का अंधकारमय जीवन इन प्रवीण शुकों के द्वारा प्रकाशमय बना है। डा० बेरियर एलविन के कथनानुसार इस नृत्य में तोते की ग्रीवा के अनुसार शिर का संचालन होता है और शुक के समान तीक्ष्ण ध्वनि की जाती है, अतः इसे सुआ नृत्य कहा गया है।[1]

यहाँ कुछ नृत्यगीत उद्धृत किए जा रहे हैं:—

'करमा'

गोरी ओर आँगा मोर छइला रहे ओ ही पार।
छैला रे बलावँ ओ ही पार।
चार खूँठ आखड़ा छोलाब,
जाय गोड़ अखाड़ा भए ठाड़।
कंठा जोरिया गीत गाव, नाच छोड़ी टीका भर जोर।
अखर गरा दौड़ी जाय, पैरी रमना झरि जाय।

---

1. The Sua dance differs only in its more exact imitations of the movements of a parrot. The women move borth feet together, very slightly, sliding them along the ground, raising the toes a little first and then the heels. They swing their buttocks slightly and move their heads to and fro as a parrot does. At the end of each line of the song, they utter a shrill parrot like cry............

(Folk-songs of the Maikal Hills P. 30.)

मादर खरना झरिजाय, रसिया का मन गिरिजाय।
चलि जावै बसिया अड़ार ठौके ठोक मदरी बराव।
फेंकि देवै झनकि रुपइया।

शैला

तर हर नाना तरिहा रे,
तरिहरि है ना ना।
कारवर डेरा डीह डोगर।
कारवर कोइल कछार।
कारवर है अमरइया,
कारवर पमर दुआरा।
सिंहा कै डेरा अमरइया।
डेरिहा परम दुआर।

झूमर

तै तो मैना भली चुपै, कबहूँ न बोलै सुघर बोली।
न बोलै सुघर बोली।
झिरपिट झिरपिट पनियाँ आवै,
कोहाँ टूटै कोइलार की डार।
धिक धिक जिउ मोर होवै, पिया रहै पर देसैं।
मैना भली चुपै।
असुबन बुंदियाँ पनिया बरसै,
कला कहौं संदेसै।
तै तो मैना भली चुपै,
कबहूँ न बोलै सुघर बोली।

सूआ

सुअना रे सुअना, भई मोरे सुअना रे,
पहले गवन के देहरी बैठारे।

घोड़ राजा, जार्यो बनझारि,
काकर सन खई हौं, काकर सन खेलि हौं।
का देख रहि हौं मन बाँधि।

रीना

सुन्दर वीरा बिरनी मा आँगन रही रेना।
बिरनी में आँगन बरोरे, हे संग में चलो पिछवारे।
चलै न पिछबारे सुन्दर बारा, आँगन में रीना रे।
चलिन पिछवारे बीरा आँगनै में, जतुली मढ़ावो रे।
पीस लेवा बढ़िया पिसान।
पोई लइन अलग-अलग सोहरिया सुन्दर बिरिया।
लँगइन हरदी बजारे।

मध्य प्रदेश के आदिवासियों के ये कतिपय नृत्य बड़े ही सरस, मनोरम, एवं अभिव्यंजनात्मक हैं।

मध्य प्रदेश के

आदिवासियों के लोक-गीतों में जीवन-दर्शन

लोक-गीत मानव के हृदय का स्वाभाविक स्पंदन है। इसमें जीवन है, उल्लास है, और संगीत के विविध स्वर हैं। लोक-गीत में आदिकाल के मानव-मन का राग-विराग अंकुरित, पुष्पित एवं फलित हुआ है। इसमें सामूहिकता है जहाँ व्यक्ति के निजत्व का समाहार समष्टि में हो जाता है। कृत्रिमता से दूर और स्वाभाविकता से परिपूर्ण लोक-गीत में यह अखिल विश्व अपने जन्म से ही प्रतिबिम्बित हो रहा है। चेतनाचेतन का भेद लोक-स्वर ने नहीं माना है। इसकी विशाल परिधि में पुष्प हँसता है, पाषाण अपनी कठोरता दिखाता है, किसलय अपने मनुहारों को कपोलों की मनोरम लालिमा से चित्रित करता है और पर्वत गरजता है। लोक-गीत में ही युग-युग के संघर्ष की कहानी अंकित है। काव्य का सौन्दर्य लोक-गीत में अनुप्राणित हुआ है। इसके उल्लसित स्वरों से अनुरंजित होकर जग की अलसाई हुई चेतना स्फूर्ति पाती हैं और कुंठित मेधा प्रबुद्ध होती है। लोक-गीत की सार्वभौमिकता ईश्वर के विराट स्वरूप के समान है, जिसका न आदि है और न अंत।

"लोक-गीत मानव हृदय से निकले इन्हीं भावों का नाम है। कभी किसी ने इन्हें लिख डालने की कोशिश नहीं की, फिर भी मनुष्यों के कंठों पर खेलने वाले ये गीत अमर हैं। राल्फ विलियम्स ने लिखा हैं, लोक-गीत न पुराना होता है न नया। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें तो दूर जमीन (भूत काल में) में धँसी हुई हैं परन्तु जिसमें निरन्तर नयी-नयी डालियाँ, पल्लव-और फल फूलते रहने हैं।[1]

---

१. मालवी लोक-गीत-श्री श्याम परमार पृष्ठ २

A Folk-song is neither new nor old, it is like a forest tree with its roots deeply buried in the past, but which continually pulls forth new branches, new leaves, new fruit'.

Ralph Vangnam Williams

समस्त आदिवासियों के गीत हमारी आदि सभ्यता के चिरंतन अवशेष हैं, जिनके द्वारा हम अपने विगत वैभवशाली प्रासाद की विशालता एवं मनोरमता का अनुमान कर सकते हैं ! ये आदिवासी हमारे ही साथी हैं। मानवीय भावों का इनमें सहज उद्रेक है। उनमें प्यार है, सुन्दरता के प्रति आकर्षण है, जीवन के प्रति ममत्व है और प्रकृति के प्रति लालसा है। हमें इनकी उदारता पर गर्व होना चाहिए और इनकी मार्मिक एवं स्वाभाविक कविता को विशुद्ध भाव से अपनाना चाहिए। इनकी संस्कृति और सभ्यता से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। इन का भोलापन मानव के वास्तविक रूप का प्रतिबिम्ब है। इनकी अकिञ्चन वृत्ति में महानता समाहित है। इनके संगीतमय गीत इतने सलोने हैं कि इनकी ओर समस्त सृष्टि आकर्षित है। इनके रसीले स्वरों से पर्वत झूमने लगते हैं, वृक्ष रोमांचित हो जाते हैं, लताएं स्नेहसिक्त हो जाती हैं, कमल लहरों के आलिंगन के लिए झुक जाते हैं, नदियाँ मिलनोत्सुका होकर इठलाने लगती हैं और रजत के समान श्वेत झरने सुख भीने स्वप्नों की स्मृति में विभोर हो उठते है। इन आदिवासियों के गीतों का स्पष्ट वर्गीकरण कष्टसाध्य है। सागर की तरंगों के समान ये परस्पर संबद्ध और अनंत है। लोक-साहित्य-मर्मज्ञों ने विविध आधारों को लेकर इनका विभाजन किया है, फिर भी यह विवादास्पद कहा जाता है। प्राप्त गीतों को दृष्टि में रखकर एक वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) नृत्य गीत (२) संस्कार गीत (३) व्यवसाय गीत (४) आराध्य गीत (देवी-देवता-गीत) (५) ऋतु गीत (६) राष्ट्रीय गीत (७) वर्तमान परिस्थितियों से प्रभावित गीत (८) बाल क्रीड़ा गीत (९) पालना गीत (१०) विशेष उत्सव गीत (११) सर्प दंश गीत (१२) शोक गीत (१३) प्रहेलिका गीत (१४) कथात्मक गीत (१५) ऐतिहासिक कथात्मक गीत (१६) जाति-विशेष के गीत।

साधारणतः इनके मुख्य गीत ये हैं :—

(१) करमा (२) सैला (३) सुआ (४) सजनी (५) ददरिया (६) मालो (७) हरपा (८) बिरहा (९) रीना (१०) फाग (११) मरमी (१२) दोहा (१३) पालने के गीत (१४) बाल-क्रीड़ा-गीत (१५) दुर्भिक्ष के गीत (१६)

भजन (१७) शोक गीत (१८) राष्ट्रीय गीत (१६) संस्कारों के गीत (२०) बम्बुलिया (२१) कथात्मक गीत (२२) हिंगाला (२३) नैन जुगानी (२४) कृषि गीत (२५) पूजा गीत (२६) प्रहेलिका-गीत (२७) राजा-रानी की प्रशंसा के गीत (२८) शिकार-गीत (२६) चरवाहों के गीत (३०) मछली मारते समय के गीत (३१) लकड़ी काटते समय के गीत (३२) मदिरा पान के समय के गीत (३३) मजदूरी करते समय के गीत (३४) वन रक्षकों के अत्याचार सम्बन्धी गीत (३५) पटवारी की प्रशंसा के गीत (३६) घरेलू काम करते समय के गीत (३७) आधुनिक सम्यता सम्बन्धी गीत (३८) पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथा-सम्बन्धी गीत (३६) हास्यरस के गीत (४०) सर्प दंश के गीत (४१) प्रकृति सम्बन्धी गीत (४२) उत्सव-गीत (४३) चमार, दर्जी, बहनियाँ, सुनार आदि से सम्बन्धित गीत आदि।

इन अपरिमित गीतों से हमें आदिवासियों की जीवन-चर्या, उनकी मान्यताओं, धारणाओं, आदि का इतिहास मिलता है। उनकी आत्मा इन गीतों में मुखरित हो रही है। जीवन-परिचय प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करने वाले नृतत्व जिज्ञासु से एक गोंड युवक ने मुस्कराते हुए कहा था—अगर तुम मेरे जीवन की कहानी जानना चाहते हो तो मेरे करमा गीतों को सुनो।[1]

आदिवासी स्वभावतः स्वतंत्रताप्रिय हैं। उसके हाथ में धनुष होने पर वह स्वयं को विजयी मानता है। एक करमा गीत में यही भावना ध्वनित हुई है।

एतनी बड़ी धनुही,
मोही काहे का भंख।
का करी मोर राजा ठाकुर,
का करी देमान।

---

१. If you want to know the story of my life.
then listen to my karma."

Folk Songs of the Maikal Hills-by Dr. Verrier Elvin (Introduction P. 14)

शिकार आदिवासी की जीविका का प्रमुख साधन है। जंगल में निर्भीक होकर घूमने वाले इन प्रकृति के लाड़लों के सामने शेर नत मस्तक हो जाता है। लाठी की मार से व्याघ्र को मार डालने वाले इन आदिवासियों को शेर और चीता के युद्ध देखने में आनन्द मिलता है। मृगया विषयक अनेक गीत सुनने को मिलते रहते हैं :—

या जेठ के दोपहरिया राज हाँका खेलेगा।
या गली बीच सुआ नार डोंगरी मा राजा हाँका खेलेगा।
ए-हे-हे-हा-ए-पहल गोली बाघिन मारि,
दूसर गोली मा बाघी ....

केकर बलाखा साँभर मिरगा मारैं ?
केकर के बलाखा बाघा मारैं ?
बैंगा के बलाखा साँभर-मिरगा मारैं।
राजा के बलाखा बाघा मारैं।

पहिली गोली बाघिन मारैं,
दूसर मारैं बाघ हो।
ऊपर बाँधारे मचान,
गोली चलैं घमसान।
तीसर गोली साहिब मारैं,
चिनवा के लाग।

बाघ-बघनियां कुस्ती खेलैं, भालू भू खू खाया।
सिंगठा बेचारा तब्बल में हाथ फेरैं, बन्दर बजावत मंजीरा।

शिकार के अभाव में ये आदिवासी लकड़ी काट कर और बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। पिता अपने पुत्र को टांगी (छोटी कुल्हाड़ी) लेकर पहाड़ पर जाने के लिये कह रहा है :—

घर लैंवे हांसी टांगी, चढ़जा पहारा रे।
सब करबबा काट डारे, कारी न काटे माया।

---

१ बलाखा—बालक।

कारी मा लागे जरवाना है रे।

खेती भी आदिवासियों के लिए आवश्यक है। समय के परिवर्तन के साथ जंगल में उन्हें लकड़ी काटना भी कठिन हो गया है। फारेस्ट आफीसरों की कोप-दृष्टि से सदैव भयभीत रहने वाले ये कानन-निवासी आज एक सूखी लकड़ी के लिए परेशान होते देखे जाते हैं। शिकार खेलने पर भी प्रतिबंध लग रहे हैं। खाली पेट रहने पर गाना अच्छा नहीं लगता। ऋण लेकर कहाँ तक जीवन-यापन होगा। इसीलिए एक गोंड अपने पुत्र को समझाता है। 'बेटो ! करमा अब सब भूल जा ! रामायण पढना छोड़ दे ! मुर्गा बोलने पर उठ और खेत जोत। जेठ-बैशाख में खेत को तैयार कर और बछड़ों को सिखाकर तैयार कर। खेती की रक्षा के लिए मचान गाड़।

"करमा गायले अरमा गायले।
करमा गए विसराय।
रामायन पोथी काम न दै हैं।
खेती किसानी आमदनी।
उचै[1] मुरगौं से[2]।
एक जुआरा नागर फाँदे।
अइसन कमाई मा आगी लागै।
व्यउहर बइठे चौफेरा।
उचै मुरगौ से।

पूता काटालैं जाल वेंवरा,
पूता लेसा ला जेठ-बइसाख।
पूता छोटे छोटे बछवाँ सिखाव,
पूता जोताला कुंडरि कचार।
पूता हो बोवाला मनारसी धान,
पूता हो जमाला ककरी समान।
पूता हो उपजाला धरती अगास,
पूता हो चार कोने मैंरा गड़ाव।

१ उचै=सोकर उठना, २ मुरगौ से=मुर्गा बोलने पर।

पूता हो बुढ़िया बैठ रखवार,
पूता हो गोड़े झुलाव सुगा हांक ।

धनाभाव से दुखी आज का आदिवासी बड़ा परेशान है । उसे मजदूरी करनी पड़ रही है । लेकिन दिन भर काम करने पर तेरह पैसे ही (बहुत कम मजदूरी मिलती है) मिलते है । एक आदिवासी युवती की व्यथा भरी कथा कितनी सच्ची है :—

जात का भइया दहँ कैं आबै,
मेरा पइसा देय ।
मेरा पइसा का करैं है,
भइया गारी देय ।

जेव मारे मुटका, कि ननदी नींछै गाल,
सइयाँ मारैं तीन तमाचा ।
रोऊँ सगली रात ।

शेर से भी न डरने वाला आदिवासी पटवारी से भय खाता है । पुलिस का सिपाही उसके लिए राजा से भी बढ़कर है ।

अब आदिवासी का जीवन कष्टमय है । उसे सब लूटना चाहते हैं । एक समय जिस वन का वह स्वामी था, आज उसी वन की लकड़ी काटने का उसे अधिकार नही है । निम्नस्थ गीतों में एक आदिवासी की गहरी वेदना चित्रित हुई हैं ।

जंगल का जंगलहा लूटैं,
घर लूटैं पटवारी ।
अउर आधी सड़क मा हो,
थाना पुलिस लूटैं हो ।
कइ से धरूँ मैं धीरा हो ।
डोगरा मा बाँस काटे,
दलखन मा गाठी छाँटे ।
आगहन रेंगा[1] रे,

---

१ रेंगा-रेंजर (वन-विभाग-अधिकारी)

साहब पड़िगा बखेरा मा।
भारी मुकद्दमा होने वाला है रे।

कलियुग की मँहगाई से पीड़ित आदिवासी अपनी स्वच्छन्दता को भूल बैठा है। आज वह दाने-दाने के लिए मारा-मारा फिर रहा है। बाजरा भी उसे भर पेट नहीं मिलता। इन गीतों में जहाँ उल्लास है वहीं दारुण दरिद्रता भी आहें भरती है:—

खेमटा (करमा)

कठिन भय गय रे, राजा तेरे राज माँ।
कठिन होइ गए रे।
कलऊ तौ फोरैं रे पेटी,[1] अइसन दीन मे।
तैं पहीरे करिया बंडी. ऊपर पहिरय कोट।
तब चलव चाँदी क रुपीया, अब चलब लोट।
कलऊ तो फोरैं पेटी, अइसन दीन में।

सोन चाँदी होइगा एक तोला।
बजुर धन तोला हैरे।

अन्न छाँड़े धन्न छाँड़े, छाँड दिये परिवारा।
कोरा[2] के बालक, छाँड़े फिरत है अकेला।
बजुर[3] धन तोला है रे।

तिरेपन के अकाल की भयावह स्मृति आज भी आदिवासी को विह्वल कर देती है:—

तिरेपन के साल रानी बेचै नाक नथुनिया है रे।
नहीं मिले चार चाउर नहीं रे कोदई।
नाहीं मिले महुआ, भाजी नाही रे सरई।
रानी बेंचे नाक नथुनिया रे।

---

१ पेटी-पेट, २ कोरा-गोद, ३ बजुर-बाजरा।

अभावों के बीच में रहकर भी ये आदिवासी अपनी प्रमोदप्रियता को नहीं भूले हैं। जीवन में वे प्रेम के महत्व को समझते हैं। उनके मानव में सौन्दर्य के लिये आकर्षण है और कमनीयता पर वे मुग्ध हो जाते हैं।

ए–हो–कर पाकँ पीपर पाकँ, सुआ कनेरी दे।
पातर मुँह के छोकरी, मोरे पराजिन[१] ले।

पतले जवान पर प्रमुग्ध होकर एक युवती कहती है:—

ए हो-हे हाय पतरैला हो जवान,
देखे मा लागे सुहावन

यौवन प्रेम माँगता है। आदिवासी युवक की प्रेम-लिप्सा कभी अघाती नहीं है। उसकी जवानी को देखकर रसीली आँखें व्याकुल हो जाती हैं। एक छैला अपनी तमन्ना को हरी भरी करता हुआ कहता है :—

एक फूल फूलँ मंडिल ऊपर।
दिल बसिगा चिरइया तोरेन ऊपर।

छैला की छवि पर मोहित होकर छबीली भी गुनगुनाने लगती है :—

पथरा का वइठे, पथर डुल जाय।
तोरी मस्ती जवानी, नजर डुल जाय॥

कच्चा रे आमा जमुन गदराय पनघट मा रंगीला छयल विदुराय

दिया तो माँगै बाती,
बाती माँगै तैल।
दोनों नैना माँगे निदिया,
जोवन माँगै देल।[२]

आदिवासियों को पेज पानी अधिक प्रिय है (थोड़े से चाँवल अथवा ज्वार, मका आदि अन्न को अधिक पानी में खूब पकाया जाता है। फिर इस पके हुए पानी को रात भर रखा जाता है। यही पेज पानी है, जिसे ये वन-निवासी

१ पराजिन-प्राण। २ The lamp needs a wick, And the wick needs oil, The two eyes want sleep And youth longs for romance.
Field songs of Chhattisgarh, by S. C. Dube P. 9.

चटनी अथवा परौरा की तरकारी के साथ मजा ले-लेकर पीते हैं) निम्नस्थ करमा में प्रिय भोज्य वस्तुओं का वर्णन है :—

'मोरे दाई मैं तो बासी खैहों रे,
ए-हे-हे मंकी के लै हों बासी।
परौरा की तरकारी।

औ खावत भागों बन का।
परवरी लै नोन हों रे।
ए-हे-हे अब कुटकी न मिठात्रें,
मैं बासी खै हों रे।

कोदोंल खैहों दाई औ आन रोज बरबाही,
मैं दुधैंच पी हों रे, मैं बासी खैहों रे।

अतिथि-सत्कार करने में इन आदिवासियों की कोई समता नहीं कर सकता है। घर पर आए हुए का ये अकिंचन भव्य स्वागत करते हैं। जितने ये बाहर से गरीब हैं, भीतर से ये उतने ही धनवान हैं :—

तोरौ पउना[1] आइन।
मोरौ मितइहा आइन।
दै देव खैर सुपारी,
जरा सा लोंग मिलाय।
थारी मा खाना धरले,
लोटा मा पानी।

सुरभित कामना की रसिकता से प्रमत्त इन विपिन-विहारियों में स्वच्छन्द प्रेमाकर्षण सुलभ है। नृत्य और संगीत इस अनावृत वासना-प्रवृत्ति में उद्दीपक बनते हैं। दाम्पत्य-प्रेम की शिथिलता इनमें अधिक देखी जाती है। पति-त्याग की घटनाएँ उक्त कथन की पुष्टि में पर्याप्त हैं। नृत्य-रत युवतियाँ सुन्दर नर्तक के साथ विहँसती हुई चली जाती हैं और अपने पतियों के विरोध की वे कुछ भी चिन्ता नहीं करतीं। करमा, रीना, ददरियाँ, शैला, विरहा, सजनी,

१ पाउना—पाँवना (अतिथि)

सालों, नैनझुगानी आदि गीतों में इस प्रकार के प्रेमाकर्षण की विविध झाँकियाँ देखने को मिलती हैं :—

ददरिया

चना तो फूटै फूटत गहियाय।
बालापन की दोसदारी, फूटत नहि आय॥

करमा

छोटी-छोटी टुरिया के, लम्बे-लम्बे जूरा रे।
लहरि लगावैं,[1] मझोले के टूरा[2] रे।

बिरहरा

छल्ला मुदरिया दइ कै अकोर[3]
निकल चला चिरई,
लइकै वियोग,

नैनझुगानी

घर मा बोलय घर चिरइया[4]।
बन मा बोलय नेवरा।
खिरकिन तेरे मित्रा बोलय,
जुरिगा सनेहा रे।

दादरा अगरिया

निकल जावैं तोरे संगे सेमलिया,
भूख लागैं तब हम से कह्या।
पेड़ा मँगादूँ बजरियन से,
निकल जावैं।
लोटा करोला[5] मन नहि भावैं।
टुटही मड़ैया गुजर करकैं।

---

१ लहरि लगावैं आँख लगाती हैं (प्यार करती हैं), २ टूरा-युवक, ३ अकोर-रिश्वत। ४ सेमलिया-प्रियतम, ५ करोला-टोंटीदार लोटा।

निकल जावैं तोरे संगे सेमलिया ।

विरहा

आमा कै पाती, बनायों चोंगी ।
चिरई तोरे कारन, भयों जोगी ।

शिक्षा के अभाव के कारण ये आदिवासी जन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना और भूत-प्रेतों पर अचल विश्वास रखते हैं। इनके मकानों की दीवालों पर चक्राकार अनेक जन्त्र चित्रित रहते हैं।

रोग-निवारण के लिए भी इन्हें भूत-प्रेतों के आशीर्वाद की कामना रहती है :—

घोड़ा माँगौ का कोड़ी का कौड़ी माँगै सूत ।
वामन माँगै कान जनेवा, वमनिन माँगै पूत ।
माना नाला जान लेवे, भइया ला सपूत ।
वड़ा शोभा लागै भइया मांगली के भूत ।
बड़ा माया लागै भइया मांगली के भूत ।

विप्र-पूजा में इन्हें विश्वास नहीं है। जन्म, मुण्डन, विवाह आदि में भी ये आदिवासी ब्राह्मण की आवश्यकता नहीं समझते। आवश्यक कार्यों का सम्पादन स्वबन्धु से ही करवाते हैं। यही कारण है कि ये विप्र युवक का उपहास करते हुए नहीं झिझकते :—

करिया के पानी चिकन पथरा ।
लट छोरे नहाय वम्हन छोकरा ।
गोहूँ के रोटी भइंस कतरा ।
तोही छाए है मोटाई, वम्हन छोकरा ।

इन आदिवासियों के जीवन में आस्तिकता है। वे परमात्मा की भक्ति की अवहेलना कभी नहीं करते। नृत्य-प्रारम्भ के पूर्व सरस्वती की वन्दना करके वे मधुर स्वर की याचना कर लेते हैं ! अनेक देवी-देवताओं में विश्वास रखते

हुए ये आदिवासी 'घमसान' देव की महिमा गाते-गाते विभोर हो जाते हैं।
ईश्वर-विनय के कुछ गीत यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

सूरसरता मइया मैं तोर पइयां लागँ,
कण्ठ विराजत मोरे।
तोका सुमिर मइया करमा रस अङ्ग,
लज्जा की बात हाथ तोरे।
सुरुर सुरुर पवन चलै, सुर नहिं आवै।
यतना सिखय अय मइया बुधि नहिं आवै।

कहना जनमें बाबा घमसान हो।
खोरियन खोरियन केकर डङ्का बोलै हो,
खेलत आवै घमसान, ओकर डङ्का बोलै हो।
खेलत आवै घासी ठाकुर ओकर डङ्का बोलै हो।
खेलता सिमार ठाकुर ओकर डङ्का बोलै हो।
खेलत आवै पोपा ठाकुर ओकर डङ्का बोलै हो।
खेलतो आवै को राव ठाकुर ओकर डङ्का बोलै हो।
खेलत आवै बूढ़ा ठाकुर, ओकर डङ्का बोलै हो।

ऋषि-मुनियों की चरण-धूलि से पवित्र हुए जङ्गलों में निवास करके इन आदिवासियों ने संसार की क्षण-भंगुरता एवं जग-ममता की अस्थिरता का पूर्ण अनुभव किया है। अध्यात्मवाद इनके जीवन-दर्शन में विशेष महत्व रखता है। इनके गाए हुए गीतों में हमें वेदान्त के स्वर मिलते हैं, जिन्हें सुन कर हमारा मन वेदान्त के चिन्तन में मग्न हो जाता है। कौन विश्वास करेगा कि ये अर्द्ध नग्न मानव अशिक्षित होकर भी ईश्वरवाद एवं अद्वैतवाद के भावों से परिचित हैं :—

करमा

या चोला का मत करो गुमान, बचाने वाला कोई नइया रे।
कौड़ी कौंड़ी माया जोरै हो गई लाख कड़ोर।
निकर प्राण बाहर हो गए, मिचका मिचका होय।

तवा बरोबर रोटी जगत का माया रे।
बाँह धरे सग भइया रोबै, छा महिना सग बहनी।
जलम जलम तक माता रोबै परगै आस पराई।
तवा बरोबर रोटी जगत का माया रे।

हाड़ जरै जस बन की लकड़ी माँस जरै जस घाँसा।
केस जलै जस बन के पत्ता, हंसा चलैं अकेला।
दइले लइले कइले भोग बिलासा रे।
कान्त कदा मर जइ है रे दादू, छाती मा जामैं घासा।
तबा बरोबर रोटी जगत का माया रे।

मिट्टी लइले साबुन लइले, मल मल कायारे।
अंत कपट का दाग न छूस्या धोबी फिर जाया रे।
ओ मुरली वाले नाहक धरम बिगाड़े।
ओ मुरली वाले।

आज का आदिवासी महात्मा गाँधी के राज्य में स्वयं को सुखी मान रहा है। पूज्य बापू का प्रशस्त व्यक्तित्व आकाश की तरह सर्वत्र व्याप्त हैं। उसकी छाया में चेतन-अचेतन सब सुखी हैं। कुछ दिन पूर्व करमा नृत्य में मैंने कुछ आदिवासियों को गाते सुना था।

गांधी के राज मा मजा करलै।
अब न लूटि हैं हम का कोई।
सब सुख हम का मिलि हैं।
नरमदा मइया जय जय कारा हो।
गांधी के राज मा मजा करलै।
हो-हो-हो।

सूरज चमके चन्दा चमके, चमके अलख तारा हो।
या हिन्दुस्तान मा हो झंडा तिरंगा चमके।
गांधी के होथै जै जै कारा हो।

सूरज चमके चन्दा चमके चमके अलख तारा हो।
खादी के धोती काँधे खादी के पिचउरा।
ओ हो ......डंडा में ठेंग लेके चल थैं।
ओ गांधी बाबा ....
गांधी के हाथों जैं जैं कारा रे।
या हिन्दुस्तान मा हो झंडा तिरंगा चमकै।
गांधी के हाथों जैं जैं कारा हो।

हमारी भारत सरकार इन आदिवासियों के उद्धार के लिए पूर्ण रूपेण सजग है। उनको शिक्षित करने के लिये अनेक पाठशालाएँ खोल दी गई हैं। साक्षर आदिवासियों के जीवन में अब नए स्वर सुनाई पड़ रहे हैं। मदिरापान ने उनका सर्वनाश किया है। उनकी साँसों में शराब की दुर्गंधि व्याप्त हो चुकी थी। अब वे अपने दुर्गुणों का परित्याग करते जा रहे हैं। आज नया सूर्य-प्रकाश परम तपस्वी एवं जन-जन के नायक—हमारे जवाहरलाल के शासन-काल में देख रहे हैं। एक दिन ये ही आदिवासी सूर्य भगवान की पूजा करते हुए मदिरा से रवि-किरणों की लालिमा को मदिर बनाते थे, लेकिन आज वे गाते हैं—

जवाहरलाल भइया तोर जैं जैं कारा हो।
ए हे हाँ निसाबाजी मा यार हो जाना खराब।
जवाहर लाल भइया तारे जैंजैं कारा हो।
गाँजा तमाखूर मुंह भर खाय्या।
घरी घरी उठ थूके, कहाना घरी घरी थूके।
गाजा भाँग पिये से महुआ घरी घरी उठ थूके।
निसा बाजी मा यार हो जाना खराब हो।
छोड़ दे ओ तूं गाजा तमाखुर छोड़ दे बंगला पान।
जवाहर लाल भइया तोर जै जैं कारा हो।

इस प्रकार हमारे आदिवासियों का सरस जीवन इन गीतों में प्रतिबिम्बित हो रहा है।

बुन्देली लोकगीत

लोक-रागिनी प्रमुदित मानव-हृदय की स्वर-लहरी है यह उल्लासमयी प्रकृति का सङ्गीत है। तरङ्गित सरिता का निनाद है; सौरभ-प्रमत्त मधुकर की मधुर गुञ्जार है। श्यामल घन-घटा की मादकता यह लोक-रागिनी रसिक मन-मयूर को सदैव प्रमुदित करती रहती है। ये लोक-रागिनियाँ अनन्त हैं, और अनन्त रूपों में व्यक्त होती रहती हैं। जीवन की अवसादमयी रजनी में एकाकी मानव ने इन लोक-रागिनियों को ही गाकर अपना मन बहलाया था। लोक-जीवन के सच्चे चित्र ये लोक-रागिनियां जनता के सुख-दुख की कहानियाँ हैं, उत्थान-पतन का इतिहास है। राष्ट्रीय, धार्मिक एवम् सामाजिक परिवर्तनों की अमिट निशानियां हैं। प्राचीन भारत की संस्कृति तथा सभ्यता इन रसीले स्वरों में मुखरित हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में भारतीय हृदय का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिए, पुराने प्रचलित ग्राम-गीतों का अनुशीलन परमावश्यक है। पुरातन लोकाचार के वेद ये लोकगीत आर्य सभ्यता की अविनश्वर रेखाएँ हैं।

मानव स्वभावतः सङ्गीतप्रेमी है। वह सुख के आनन्द को तथा दुःख के असहनीय भार को गीतों द्वारा ही प्रकट करता है। इसीलिए इस चेतनाशील मानव ने प्रत्येक अवसर पर गीत-गायन-प्रणाली की सृष्टि की है। मधु सौरभ-सिंचित मधु-मास में वह फागें गाता है। काले जलधरों की रसीली बूँदों से पुलकित होकर वह ऊँचे स्वरों में बिरहा सुनाता है। तीर्थ-यात्रा का पथिक बनकर वह कभी भक्ति-विह्वलता में 'रमटेरा' की टेर लगाता हैं; तो कभी महाशक्ति की उपासना में तल्लीन हो भजनों से अपने भक्ति-भावों को व्यक्त करता है। दीपमालिका की दिव्य ज्योति का आनन्द वह दिवाली गाकर प्रकट करता है। इसी प्रकार सैरे, रावला, राछरे, दादरे, रसिया आदि गीतों के गायन से

बुन्देलखण्ड का भावुक ग्रामवासी अपनी म्लान चेतना को सजग बनाता रहता है। ये लोक-रागिनियाँ जीवन की सरलता तथा भावों की सुकुमारता के ही मधुर स्वर हैं। इनमें कृत्रिमता नहीं है।

हमारे राष्ट्रपति के ये शब्द लोकसंगीत की महत्ता में पर्याप्त हैं—"हमारे यहाँ गीत हर मौके के लिए हैं। संगीत तो हमारे जीवन में भरा पड़ा है। यही जरिया है कि हमारे लोग निरक्षर होकर भी समझदार रहे हैं। हमारे यहाँ तो ज्ञान केवल आँखों से नहीं, कानों के द्वारा भी दिया गया है। श्रवण के द्वारा हमारे महर्षियों ने ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों को जनता के जीवन में बहुत कुछ उतार दिया है।"

बुन्देलखण्ड के लोक-गीत अपनी विशेषता रखते हैं। उनकी भावुकता, रस-स्निग्धता, स्वाभाविकता, सरलता एवम् कोमलता प्रशंसनीय है। श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने बुन्देलखण्ड के गीतों का वर्गीकरण निम्नस्थ प्रकार से किया है :—

(१) सैंरे—ये आषाढ़ मास से लेकर श्रावण मास के अन्त तक गाये जाते हैं।

(२) राछरे—ये ज्येष्ठ से श्रावण तक गाये जाते हैं।

(३) मलारे और सावन—ये श्रावण और भाद्रपद में गाई जाती हैं।

(४) बिलबारी और दिवारी—ये क्वार और कार्तिक में गाई जाती हैं।

(५) बाबा के या भोला के गीत—ये संक्रान्ति आदि तीर्थयात्रा के अवसर पर गाये जाते हैं।

(६) फागें और लेदें—माघ-फागुन में गाई जाती हैं।

(७) गारी—विवाहादि के अवसरों पर गाई जाती हैं।

इनके अतिरिक्त घास काटते समय, मजदूरी करते समय, चक्की पीसते समय इत्यादि अनेक अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत, भजन, दादरे आदि गाए जाते हैं। (देखिए—मधुकर, १ सितम्बर ४२)

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंहजी ने बुन्देलखण्डी ग्राम-गीतों का विभाजन विषय के आधार पर इस प्रकार किया है :—

(१) धार्मिक गीत—माता के गीत, कार्तिक के गीत, गोटें, बाबा के गीत, देवताओं के गीत, नौरता, सुअटा के गीत।

(२) सामाजिक गीत—साजन, बनरा, गारी, बधाई, सोहरे, गड़रयाऊ, बिरा, कछयाऊ, दादरे, लावनी, ख्याल, दोहरा, चोंपरा।

(३) सामाजिक गीत—मलारें, सेहे, सेरें, बिलमारी, फागें, दिवाली, दिवरी, सावन, बनजारा, लोरियाँ, राहुला, ख्याल, राछरे, ऊछरी, कहरवा, होली, रसिया।

(देखिए—विन्ध्यभूमि, अगस्त-अक्टूबर १६४७)

बुन्देलखंड की इन रसीली रागिनियों की सृष्टि में पुरुष की अपेक्षा नारी ने विशेष योग दिया है। कुमारी, कामिनी, जननी, मानिनी, एवं विरहिणी आदि अनेक रूपों में नारी ने अपने हृदय की भावनाओं तथा कामनाओं को सुलभ याचनाओं के साथ गीले कंठ से इन रागिनियों में स्पष्ट किया है।

निर्मम पुरुष से प्रताड़ित भारतीय नारी ने अपने भाग्य को ही दोष दिया न कि अन्य को। नारी का यह श्लाघ्य रूप इन लोक-गीतों में भावुकता के साथ चित्रित हुआ है।

नारी की यही शिकायत है कि मनुष्य ने उसके साथ विश्वासघात किया। बांह पकड़कर भी उसने मँझधार में छोड़ दिया—

"यारी करी दिल जान कैं,
दैं परमेसुर बीच।
इतनी जामैं खोटी करी,
छोड़ गए अधबीच।
छैल रे तोरे भले होनें ना।

* * *

पति-गृह जाकर पुत्री पराधीन हो जाती है। उसकी स्वच्छंदता आहें भरने लगती हैं; उसकी रात आटा पीसने में जाती है, और गोबर करते-करने उसका सुनहला दिन काला पड़ जाता है :—

"खेल लो बेटी, खेल लो माई बबुल के राज।
जब ढुर जैहो सांसरे, सास न खेलन देय।
रात पिसावैं पीसनों दिन के गुबर का हेल।
हिमाचल जू की कुंअरि, लड़ायती नारे सुअटा॥

* * *

दुखिया को दुर्दिन में भगवान ही सहायता करता है। इसीलिए ईश्वर को कुजनपाल कहा गया है। जीवन से थकी हुई नारी की वेदना, इन पंक्तियों में चीत्कार बन गई है—

"देहरिया तो दुर्लभ भइ रे मोरे प्रभु।
अँगना भए हैं विदेश।
माई बाप बैरी भए रे स्वामी।
लै चलो अपने देस।

* * *

प्रतीक्षा में जगजगकर अपनी आंखें लाल करना ही स्त्री के भाग्य में लिखा है। इस फाग में हृदय की वेदना, नायिका की तड़फन तथा झुंझलाहट सरल भाषा में अंकित है।

'मारग आधी रात नो हेरी,
यार बिदरदी तेरी।
पीकत रही पपीहा कैसी,
कहां लगाई देरी।
छन भीतर छन बाहर ठाड़ी,
आँख लगी न मेरी।
'ईसुर' तलफ-तलफ कैं सो गई,
तीतुर बिना बटेरी।

* * *

हिन्दू समाज में विधवा-जीवन, नरक-यातना का ही प्रतिरूप है। निम्नस्थ बुन्देलखंडी गीत में विधवा की करुण कथा गहरी आहों से भरी हुई है :—

"तिरिया जनम दय्यो मोरे रामा।
चुरिया अमर री होन न पाई, रूठ गए भगवान।
पांव महावर छुटन न पाए, छूटे न हरदी के दाग
सो रामा मोरी को जो लगाए नैया पार........

* * *

कविता, कवि की भावनाओं का ही प्रतीक है। सामाजिक प्राणी होने से कवि के विचार परिस्थितियों से निर्मित होते रहते हैं। यही कारण है कि लोक-गीतों में लोक-भावना, सामाजिक रीतियां तथा जातीय मान्यताएँ चित्रित हैं। निम्नस्थ 'बधावे' की इन पंक्तियों में कुछ बुन्देलखंडी रीतियों का उल्लेख है :—

"सोरा गऊ के गोबर मंगाये,
कंचन कलस धराये।
चन्दन पटली धराई यशोदा,
चौयक दियल जराये"....

* * *

कुछ दिन पूर्व विवाहादि में वेश्या-नृत्य का विशेष प्रचार था—बुन्देलखंड की सजी हुई बरात का दृश्य देख लीजिए :—

बना की नख-सिख सजी है बरात,
कि धरती थर थर कांपे रे।
बना के आमए नवल निसान,
पतुरियां छम-छम नाचे रे।

* * *

बुन्देलखंड के प्रसिद्ध 'रमतूला' को कौन नहीं जानता। इस बाजे के बिना बरात की शोभा फीकी हो जातो है :—

'बउरी कबै बजै रमतूल,
बउरी मेंबड़े आमव दूल्हा।'

* * *

आप बुन्देलखण्ड के ग्राम में जाइए। वहाँ आपको प्रातः तथा सायंकाल अनेक युवतियाँ कुएँ पर पानी भरती हुई मिलेंगी।....एक साथ मिलकर पानी भरने के लिए जाने की इच्छा बुन्देलखण्डी कामिनी की विशेषता है :—

'चलो देवरनियाँ ! चलो जेठनियां,
हिल-मिल पनियाँ चलिए लाल।'

* * *

आभूषण-प्रियता, नारी-स्वभाव की मौलिकता है। यह गीत इसी का परिचायक है :—

"चलो चलिये हाट इमलिया की।
सौदा सूद मोय कछू न चानें,
तनक ललक मोय बिंदियन की,
थोरी ललक मोय कजरन की....

* * *

बुन्देलखण्ड के लोक-गीतों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा के ये विचार विशेष महत्त्व के हैं :—

"बुन्देलखण्ड के लोक-गीतों में संन्यास, विरक्ति, मायावाद और वास्तव से पलायन नाममात्र को ही है। जो कुछ भी है वह सन्त, महन्तों या बाबा वैरागियों को प्रसन्न करने या उनके प्रति श्रद्धा रखने वालों को भुलावे में डालने के लिए है।"

यह सत्य है कि आदर्शवाद की अपेक्षा इन गीतों में यथार्थवाद का अधिक चित्रण है; जो स्वाभाविक होने से श्रोताओं अथवा पाठकों को शीघ्र ही प्रभावित कर देता है। कृष्ण के वियोग में राधा के नेत्रों का चौमासे के मेघों की तरह बरसना समुचित ही है :—

"का नई बनी बिगर गई हम से,
निकर गये ईं घर से।
चन्द्रमुखी राधा के अँसुवा,
चौमासे से बरसें।"

* * *

विरह में सुन्दर शरीर का छुहारा हो जाना स्वाभाविक ही है :—

"जो तन हो गम्रो सूख छुहारो,
ऊसई हतो इकारो।
रैं गई खाल हाड़ के ऊपर,
मकरी कैसो जारो।"

* * *

बुन्देलखण्ड वीरों की युद्धभूमि है। महाराज छत्रसाल की तलवार यहीं पर स्वच्छन्द होकर खेली थी। आल्हा-ऊदल की शूरता के चिह्न बुन्देलखण्ड की रक्तरंजित रेणु है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता आजादी के इतिहास की चिरंतन भूमिका है। इस प्रान्त में गाये जाने वाले राछरे और पँवारे वीर गाथा से गुञ्जित हैं।

छत्ता तेरे राज में धक धक धरती होय

* * *

जैतपुराधीश महाराज परीक्षत के तेगा की प्रशंसा में एक लोक-कवि गाता है :—

भूरी हथनियां गरद मिल जाय,
परीछत को तेगा कतल करु जाय।
मकना हाथी टरत नइयां,
परीछत को तेगा डरत नइयां।

* * *

निम्नस्थ पद्य झांसी की वीरांगना की प्रशस्ति में पर्याप्त है :—

सहर न झांसी सानी को, बाई चलो साहब मरदानी को।
सुन्दर बनौ दुर्ग दरवाजौ, डङ्का जहाँ विजय को बाजौ।
दुश्मन हार मानकर भाजौ, वीरवन्त लख नारी को।

* * *

इन लोक-रागिनियों में भाव-पक्ष ही प्रधान है, फिर भी कला-पक्ष की उपेक्षा नहीं हुई है। अलङ्कारों का प्रयोग इन गीतो में बहुत सुन्दर हुआ

है। अलङ्करण के इन उपादानों ने भाव-व्यंजना में वृद्धि की है। काली लटों का वर्णन सुनिए :—

समता करैं जो लट काली की,
काम जाल व्याली की।
सटकारी अति अलि सम सो हैं,
खुश वोहन पाली की।
तम के पूत सूत रेशम के,
लखत नजर काली की।

* * *

उन्नत भूधरों के शिखरों, हरीतिमा के सुखद पुञ्ज काननों एवं कल-कल निनादिनी सरिताओं ने बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य को सप्राण बनाया है। यहाँ के लोक-गीतों में मौन प्रकृति भी वाचाल बन गई है। वसन्त-वर्णन सुन लीजिए :—

"आ गए दिन बसन्त के नीके,
सुख दायक सब ही के।
भासन लगे रूप रासन पै,
तोसन भूषन ती के।
रँग गए जरद पटंबर अम्बर,
भूमण्डल सब ही के।
मलैं अबीर अरगजा अम्बर,
अपने-अपने पी के।

* * *

बुन्देलखण्ड भी कृषि-प्रधान प्रदेश है। किसान का जीवन कष्टमय है। वह अन्नदाता होता हुआ भी अपने बुभुक्षित उदर को भर नहीं पाता।

"सब से बज्जुर है छाती किसान की" इस गीत में कृषक की अन्तर्वेदना हृदयस्पर्शी बन गई है। हम लोग प्रतिदिन नंगे किसानों को देखते हैं। उनकी परिस्थिति वास्तव में शोचनीय है :—

"जियरा सूख गए खटका में।
अरे मोड़ा मोड़ी रोटी माँगे,
नाज नहीं मटका में।
उन्ना फट गए कपड़ा फट गए,
दिन कांटें फड़का में।.........

भारतीय संस्कृति की आधार-शिला अध्यात्मवाद है, जिसका विवेचन हमारे लोक-गीतों में अधिक हुआ है। एक विद्वान् का कथन है कि लोक-गीतों का बालपन धर्म की छाया में बीता है :—

घट घट राम गुसैयां,
तोये सुजत नैयां।
चत अज्ञान अँधेरो छायो,
जासन अपनो चीन न पायो।
कौन बरन है सैयां,
तोये सूजत नइयां।

* * *

बावरी रइयत हैं भारे की
दई पिया प्यारे की।
कच्ची भीत उठी माटी की,
छाई फूस चारे की।
वे वन्देज बड़ी पे बाड़ाँ,
जेइ मैं दस द्वारे की ...

(मानव-देह के विषय में यह फाग कितनी सत्य है)

* * *

नीति-निरूपण बुन्देलखण्डी लोक-गीतों की विशेषता है। नीति-तत्त्वों का संक्षेप में वर्णन हमें इन लोक-स्वरों में अनायास मिल जाता है—

"मिल कें चाल चलौ दुनिया में,
सबतें राख घरोबो।"

* * *

पन्ना की राई प्रसिद्ध है। राई एक नृत्य-गीत है। केवल एक पंक्ति को नर्तकी घण्टों गाती रहती है। लय का उतार-चढ़ाव श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर देता है :—

"परदेशी की प्रीति आधी रैन को सपना"

* * *

"उड़जा गंगाराम पिंजरा पुराने हो गए।"

* * *

"हमरो हँसना सुभाव भौजी बुरी जिन मानिये।"

* * *

"करहो न गुमान थोड़े दिनन को जीना रे।"

* * *

बुन्देलखण्डी दादरे संगीत-प्रेमियों के लिए विशेष आकर्षण की वस्तु हैं :—

पिया छाए परदेश जियरा डगमग डोले।
कछु भेजे न सन्देश। जियरा ....

* * *

आज उनीदे नैंना जगैं कहुँ रैना। ... ...

* * *

बुन्देलखण्ड की बोली में विशेष माधुर्य है क्योंकि यह ब्रजभाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसी भाषा-विषयक मधुरता ने इस प्रदेश की लोक-रागिनियों को अत्यधिक रसमय बना दिया है।

शृङ्गार, वीर, करुण, हास्य तथा शान्त रसों का इन रागिनियों में सुन्दर परिपाक हुआ है। ये लोक-स्वर अनन्त हैं। इनकी गणना करना कठिन है। राल्फ विलियम्स के मतानुसार लोक-गीत कानन के पादप के समान निरन्तर बढ़ते रहते हैं। वर्तमान साहित्यकारों को नव्य एवं भव्य साहित्य-सर्जना में ये लोक-रागिनियां विशेष सामग्री प्रदान कर सकती हैं।

घिर आईं बदरियाँ सावन की

[1]विन्ध्य के लोक-गीतों में वर्षा मंगल

प्रकृति को रससिक्त करने वाले पावस में वसुंधरा नवेली वधू बनकर इठलाने लगती है। नभ की नीलिमा से ठुमुक-ठुमुक कर उतरने वाली नन्हीं-नन्हीं बूँदे मानस की प्रसुप्त भावनाओं को झकझोर देती हैं। जब कौंध के कुंडलों को पहन कर श्यामल घटाएं सलोने चाँद से अभिसार करने लगती हैं तब तो रसिकों का स्वप्निल संसार साकार हो जाता है। जलधरों की पुकार को सुनकर सर-सरिताएँ अंगड़ाइयाँ लेने लगती हैं; गर्वीली गोरियाँ 'परदेसी प्रीतम' की प्रतीक्षा करने लगती हैं और बहनें अटा पर चढ़कर अपने बीरन (भाई) की याद में नैहर की ओर टकटकी लगाती हैं। इसी पावस में लताएँ पुलकित होती हैं, कजरारी आँखें लजीली बन जाती हैं, प्यासे अधर आतुर होने लगते हैं और कलियाँ अवगुंठन खोल देती हैं। ऐसी मनभावनी पावस ऋतु लोक-गीतों के सुमधुर स्वरों में मुखरित होकर अमर हो गई और लोकरागिनियां वर्षा के नूतन सलिल से स्नात होकर पावन बन गई। इस ऋतु में गाए जाने वाले गीत सावन, मलार, कजली और हिन्डुली हैं। खेतों में हल चलाते हुए कृषक उमड़ती घटाओं को देखकर सैरे गाने लगते हैं। सिर पर हरी घास के गट्ठर रखकर जब नबोढ़ाएँ ददरिया या कजरी गाती हैं, तब उनकी पतली कमर कई-कई बार बल खा जाती है—

'झारें सुख सावन की झरियाँ,
ददरिया गाले री गुइयाँ।

१, सन् १९४८ में सम्पूर्ण बघेलखण्ड एवं बुन्देलखंड की कतिपय रियासतों के एकीकरण के फलस्वरूप विन्ध्यप्रदेश का निर्माण हुआ था, जो सन् १९५६ में नव-निर्मित विशाल मध्यप्रदेश में विलीन हुआ।

रिमझिम बरसें नए पनियाँ,
पिया ओढ़े कमरिया फिरें गलियाँ।

पावस के इन रसीले गीतों में हृदय-स्पर्शिनी अनुभूतियाँ हैं, और संयोग एवं वियोग शृंगार के मधुर और करुण भाव ऐसी कोमल तूलिका से अंकित हुए हैं कि वे चिर-परिचित होते हुए भी नित्य नये लगते हैं।

पुरवैया के जलधर गगन में छा गए हैं। ये बरस कर ही रहेंगे। यौवनोन्मत्ता कामिनी का मन पुरवैया के स्पर्श से पुलकित हो उठा है। युवती का घूंघट अब हटना ही चाहता हैं। लीजिए उसके ललित कपोल भीग ही तो गए—

गाड़ी वारे मसक दै बैल,
अबै पुरवइया के बादल ऊन आये।
कौन बदरिया ऊनई रसिया,
कौन बरस गए मेंय।
अबै पुरवैया के बादर ऊन आये।
ऊगम बदरिया ऊनई, रसिया,
पच्छम बरस गए मेय।
अबै पुरवइया के बादल ऊन आये,
घुंघटा बदरिया ऊनई, रसिया,
गलुअन बरस गए मेय।

शुष्क काष्ठ भी पावस की बौछार से अंकुरित हो उठता है। नदी और नाले स्वच्छन्द होकर हिलोरें लेने लगते हैं। ऐसी उन्मादिनी वर्षा में पति का पत्नी के प्रति उदासीन हो जाना कामिनी के लिये असह्य है—

"असढ़ा में देवें घन घोरे,
चहुंदिसि बोल रही हैं मोरे।
नदिया — नारे लेत हिलोरें!
गुइयाँ सइयाँ के हिये बीच गाँसरी।
सावन रिमझिम बूंदें बरसें,
पिया के दरसन को जिय तरसैं।

आली कित कढ़जाऊं घर सैं,
बैरी फूल रह्यो भदैयाँ काँस री।
एक दुख, एक हाँस री,"

प्रकृति के लिए पावस मिलन की मोहिनी मूर्ति है। इसमें लताएँ पादपों से लिपट जाती है, मधुरता की प्रतीक कलियों का मधुकर चुम्बन करने लगते हैं, स्रोतस्वि-ी सागर से मिलती है तथा घटाएँ चन्द्र से आँख-मिचौनी खेलती हैं। पति-वियोगिनी के लिये वर्षा ऋतु काली नागिन के समान भयावह होती है। पति-विरह-व्यथिता की आकुलता का मार्मिक चित्रण इस फाग में देखिए—

"हमपै बैरिन बरसा आई,
हमें बचा लेव माई।
चढ़कै अटा घटा ना देखैं,
पटा देव अंगनाई।
बारादरी दौरियन में हो,
पवन न जावे पाई।
जो द्रुम कटा छटा फुलबगियाँ,
हटा देय हरियाई।
पिय जस गाय सुनाव न 'ईसुर'
जो जिय चाव भलाई।"

जब मिलन की आशा ही नहीं है तब वर्षा का स्वागत कैसा ? फुलवारी के सुमन, प्रीतम के विरह में कंटक बन जाते हैं। सावन में मायके जाने के लिए उत्सुक एक युवती सासरे में विद्ध विहग की तरह तड़फड़ा रही है। वह अपने भाई की प्रतीक्षा में बेचैन है—

ऊँचे अटा चढ़ हेरें नैना,
मोरे भैया लिवऊआ आये।
माई खों बेटी बिसर गई,
बाबुल की गई सुध भूल।

बुन्देलखंड में प्रसिद्ध लोककवि श्री प्यारेजू के दादरे विशेष प्रिय हैं। इस दादरे में वर्षा का कितना सुन्दर चित्र खींचा गया है! पंक्तियाँ प्रिय-पथ-दर्शनानुरक्त भामिनी की व्यग्रता को स्पष्ट कर रही हैं —

करत घन घोरा नभ की ओरा।
फिरत समूह जूह मिघवन के, धाय-धाय चहुँ ओरा।
बहोरा, जल भरु भोरा।
सरिता सम तूल भए सब द्रुमन लतायन उमंग न थोरा।
भये सहजोरा।
रटत पपीहा पिउ-पिउ सजनी, दादुर झींगुर कर गये सोरा।
बोलत मोरा।
निरखत कंत को पंथ विरहनी, प्यारे जू कहै।
ठाड़ी दोरा, सन्ध्या भोरा।

हिन्दी साहित्य में ऋतु-वर्णन उद्दीपन के रूप में अधिक हुआ है। इसका कारण परंपरागत काव्य-मान्यताएँ हैं जिनका प्रभाव कला-गीतों एवं लोक-गीतों पर सदैव पड़ा है। लोक-गीतों की विशेषता यही है कि वे व्यक्तिगत अनुभूति के माध्यम न बनकर सामूहिक भावनाओं के परिचायक होते हैं। लोक-कवि व्यास के एक सैंरे में वर्षाकालीन वातावरण सजीव हो उठा है। राधिका के श्याम दूर हैं। पावस की झड़ी में एकाकी श्यामा रह-रह कर कृष्ण की याद कर रही है और थर-थर काँप रही है, उसकी आँखों से झड़ी लगी हुई है—

दोहा—घन घमंड चहूँदिसि उठे, झर झर बरसत नीर।
छाय स्याम परदेस में, मदन जनावत पीर॥

सैंर— बरसत अखंड मेह पवन चलत घनेरी।
कर घूम झूम-झूम झला बरसत जेरी।
कँप रही देह थर-थर झर रही अँधेरी।
किहि कारन सों आज भुजा फरकत डेरी।
चपला की चमक घनी धमक जुगनू केरी।
सूनी निहार सिजिया दृग नीर भरेरी।

आवत न नींद रंचक विरहा ने लयेरी।
किहि कारन सो आज भुजा फरकत डेरी।
चातक के बोल मोपै न जात सहे री।
ऋतु पावस में कोई नहीं देत फेरी।
घर घर लगे कपाट सखी नैया नेरी।
किहि कारन सो आज भुजा फरकत डेरी।

बघेलखंड की एक नव-विवाहिता वधू स्वपति से आग्रह कर रही है कि सावन की बहार में उसे मायके भिजवा दे—

"आई सामन की बहार, जियरा न लागइ हमार,
हमैं नैंहर पहुँचाई दे, अरे साँवलिया।

ससुराल जाती हुई पुत्री मां से कह रही है कि सावन में वह लिवाने के लिए बीरन को ही भेजे, नाई, अथवा कहार के पुत्र को नहीं। ऐसा क्यों? उत्तर 'हिन्दुली' में सुनिये—

"माई ताल कुहँकै तल मोरवा त समान दुई रे दिना।
माई घेरिया कुहँकै परदेस, त सामन दुई रे दिना।
माई नऊआ का पूत जिन पठये, त सामन दुई रे दिना।
माई पतरी खिलत दिन बितिहीं, त सामन दुई रे दिना।
माई कँहरा का पूत न पठये, त सामन दुई रे दिना।
पनिया भरत दिन बितहै, त सामन दुई रे दिना।
माई हमरा बिरन तुहुं पठये, त सामन दुई रे दिना।
उमुकि ठुमुकि लै अइहीं, त सामन दुई रे दिना।

पावस के गीतों से हमें कहीं-कहीं मातृ-हृदय की कोमलता एवं धीरता देखने को मिलती है। राम वन में हैं, कौशल्या 'पूरवा के उमही बदरिया' से प्रार्थना करती हैं—

पूरवा के उमही बदरिया, पच्छिम झनि बरसेउ,
कदली के बन झनि बरसेउ, जहां राम होइहीं,
हमरे राम के लिखी पिढइयां ता केउ नहिं बांचै,
मोरे सीता के दीन केवरिया ता केउ नहिं खोलै, ...

झिरमिर झिरमिर पान बरीसैं,
कउन विरिछ तर भीजत हुईहैं,
राम लछन दोनों भाई।

वर्षा का सौन्दर्य तब निखरता है जब युवतियाँ रङ्ग-विरंगे कपड़े पहन कर झूलती हैं, झूलों पर मिचकियां देती हुई ये सुन्दरियाँ अपने कजरारे नयनों से काले-काले बादलों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं; हरी-पीली चुनरियों से चपला को भी चकृत बना देती हैं। इन्द्रपुरी की अप्सराओं-सी ये कामिनियाँ झूलती हुई सावन या कजली गाती हैं जिनमें पारिवारिक जीवन की विविध झाँकियाँ रहती हैं :—

हो गए मोरे महाराज सुनो, सखी सइयाँ जोगी होगए !
\+ + +
कीनें बोये मोरे महाराज नदिया किनारे बेला कीने बोये।
की जो लगावे बेला चमेली, को जो लगावे गुलाब कीने बोये।
\+ + +
कैंसी खेलौं कजलियाँ सखियाँ हरि मोर छाये बिदेसवा।
× × +
सखिया चला चली दरसन का,
ब्रज मां झूलि रहे गोपाल।

सुनिए, बुन्देलखण्ड का एक कृषक क्या गारहा है ?—

सदा ने तुरैया अरे फूले,
ने सदा रे सावन होय।
सदा ने राजा अरे, रन जूझे,
सदा न जीवे कोय।

मानव का हृदय एक है। उसकी कामनाएँ समान हैं। उसकी कसक और वेदना सर्वत्र एकसी है। उसके मनुहारों की दुनिया में न कोई विषमता है और न किसी प्रकार का नर-कृत भेदभाव है। इसी कारण सर्वदेशीय एवं समस्त प्रान्तीय लोक-गीतों में भाव-साम्य है। इस प्रकार लोक-गीतों में पावस-प्रमोद की विविधता बड़े सुरीले कण्ठों से गाई गई है। इसमें मार्मिक अनुभूतियां हैं, कसक भरी वेदना है, और उल्लास भरी अठखेलीं।

दिन ललित वसन्ती आन लगे

वसन्त आनन्द का प्रतीक है, उल्लास का चरमोत्कर्ष है, मधुरिमा का चिरन्तन सत्य है, प्रकृति की सुषमा का परम उपहार हैं, जीवन का कुसुमित यौवन है और सम्मोहन का अव्यर्थ उपादान है।

सुरभि इसी सुरभित ऋतु में अपनी कमनीयता पर इठलाती है। कामिनी अपने कलित कण्ठ की स्वर-लहरी को इसी मधुमास में मधुसिक्त करती है।

कोकिला की कूक, मधुकर-निकर का गुञ्जन, ललित लताओं का प्रकंपन, सौरभ का वर्णन, सुमनों का उन्मद उन्मेष, सरोवरों का वीचि-विलास, विहङ्गों का कलरव, रसीली आम्र-मञ्जरी की भीनी सुगन्धि, पादपों का पुष्पित पराग, एवं पर्वत-शिखरों का समुल्लसित सौन्दर्य मानव-हृदय को पुलकित कर देता है; वसुन्धरा के प्राङ्गण में नवोल्लास भर देता है। मन्मथ-सहचर वसन्त का वर्णन प्रत्येक युग के कवि ने गरिमा के साथ किया है। ऋतु सम्बन्धी उत्सवों में वसन्तोत्सव प्रधान है। इसके अन्तर्गत सुवसन्तक और मदनोत्सव विशेष उल्लेखनीय हैं।

लोक-कवि धरिणी के लाल है। धरती के समान ही इन कवियों का हृदय विशाल एवं भावुक है। प्रकृति की रम्यस्थली ग्राम हैं जहाँ जीवन और प्रकृति दोनों एकाकार होते हैं। काननों में ही प्राकृतिक सौन्दर्य विकसित होता है और अपने लालित्य में परिपूर्ण बन जाता है इसीलिए वसन्त का जितना मनोरम स्वरूप लोक-कवियों की बानी में स्पष्ट है, उतना अन्यत्र नहीं। ऋतुराज के राजत्व, मनोहरत्व, विलासत्व, मादकत्व एवं पावनत्व की विविधता लोक-कवियों के काव्य में गुञ्जित है। जनता के इन कलाकारों ने लोक-जीवन की पृष्ठभूमि पर वसन्त को चित्रित करके मानवीय भावनाओं को कोमल तूलिका से अङ्कित किया है।

"प्रकृति-निरूपण की निम्नलिखित विधाएँ कही जा सकती हैं :—

(१) आलम्बन रूप (२) उद्दीपन रूप (३) अलंकार रूप (४) रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति (५) मानवीकरण (६) उपदेश (७) पृष्ठभूमि वा वातावरण निर्माण तथा (८) प्रतीक। इनमें से किसी एक रूप में किये जाने वाले प्रकृति-चित्रण में दूसरे रूप या रूपों से भी सहायता ली जा सकती है।

"प्रकृति-चित्रण की विधाएँ परस्पर एक दूसरे से गुँथी हुई हैं; उनका पूर्ण निरपेक्ष अस्तित्व प्रायः कम ही दिखाई देता है।" (१) लोक-कवियों का प्रकृति-दर्शन एवं चित्रण विशेष रूप से उद्दीपन के रूप में हुआ है। रीति-कालीन कवियों की मान्यताओं (प्रकृति विषयक) का अनुसरण करते हुए इन लोक-कवियों ने मानवीय भावनाओं को प्राकृतिक व्यापारों से उद्दीप्त किया है।

मानव और प्रकृति का अनादि सम्बन्ध है। मानव-जीवन का सतत विकास प्रकृति के साहचर्य से होता है, ऐसी स्थिति में मानवीय चेतना का प्रकृति द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक ही है।

यहाँ पर ऋतुराज-वसन्त विषयक विन्ध्य के लोक-कवियों की कुछ कविताएँ दी जा रही हैं जिनसे वसन्त की मधुरिमा एवं व्यापकता का आस्वादन तथा परिशीलन हो सकेगा।

शृङ्गार रस के नायक सलोने श्यामसुन्दर हैं जिनको रसिक-शिरोमणि कहकर ही कवि स्वकीय रसमयता का परिचय देता है।

वसन्त-निरूपण में मनमोहन का सर्वत्र स्मरण हुआ है। श्री रामप्रसाद वनमाली को वसन्त के ही रूप में देख रहे हैं :—

वनमाली वसन्त बने आली।
बाबानन्द इन्द्रजाली।
माथे मौर मनोहर राजै,
कलगी सरसौं जौं वाली।

---

(१) आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रकृति-चित्रण लेखक-प्रो०—रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, एम० ए०।

गुलदावर के कुण्डल गजरा।
केशर तिलक दियो भाली।
केसरिया बागो तन सोहैं,
गेंदा फेंट कसें ख्याली।
रामप्रसाद देख छवि मोहे,
चरन कमल की लखि लाली।

वासन्ती पवन के झोंकों से शुष्क पादप भी पुलकित हो उठता है। समाधिस्थ यति भी माधव में मधु-चिन्तन-रत हो जाता है। जन-कवि ईसुरी के इस कथन में कितना सत्य है :—

अब ऋतु आई बसन्त बहारन,
पान फूल फल डारन।
बागन बनन बंगलन बेलन,
बीथिन बगर बजारन।
हारन हद्द पहारन पारन,
धाम धवल जल धारन।
कपटी कुटिल कन्दरन छाई,
गई बैराग बिगारन।
मौरे आम मंजरिन ऊपर,
लगे भ्रमर गुञ्जारन।
चाहत हतीं प्रीत प्यारे की,
हा हा करन हजारन।
जिनके कन्त अन्त घर से हैं।
तिनें देत दुख दारुन।
ईसुर मौर भौंर के ऊपर,
लगे भौंर गुञ्जारन।

वन-उपवन का वातावरण वसन्त में मादक बन जाता है। सर्वत्र फैली हुई मदभरीं पियराई दर्शक को रागमय कर देती है। छत्रपुर निवासी श्री गङ्गाधर व्यास की इन फागों में मधुमास का आकर्षक चित्र खींचा गया है :—

दिन ललित बसन्ती आन लगे,
हरे पान पियरान लगे।
घटन लगी दिन पै दिन रजनी,
रवि के रथ ठहरान लगे।
उड़न लगी चहुँ ओर पताका,
पीरे पट फहरान लगे।
बोलत मोर कोकिला कूकत,
अम्मन मौर दिखान लगे।
गंगाधर ऐसे में मोहन,
कित सौतिन के कान लगे।

श्री दुर्गा ने विरह-व्याकुला कामिनी की मनोव्यथा का चित्रण करते हुए वसंत का उद्दीपन रूप प्रस्तुत किया है :—

अब दिन आये वसन्ती नीरे, ललित और गम्भीरे।
सोने पत्र समान पान भए, होन लगे हैं पीरें।
पीरे बाग बिपिन बन पीरे, पीरे कुञ्ज कुटीरें।
टेसू और कदम्ब फूल रए, कालिन्दी के तीरे।
'दुरगा' कहत नार विरहिन के, पिय-पिय रटत पपीरे।

वसन्तोत्सव कामदेव के सुख-विलास का समारोह है। इस सरसता के आलम में जड़-चेतन, युवक-वृद्ध, नर-नारी, अङ्गी-अनङ्गी, सुर-असुर सब गुन-गुनाने लगते हैं। जवानी की असलियत की परख मधुमास में हो तो होती है—

मेहतरानी हो कि रानी गुनगुनाएगी जरूर,
कोई आलम हो जवानी गुल खिलाएगी जरूर।

भक्त कवि जयदेव की बानी ने मुखरित होकर इसी ऋतु में कहा था—

"ललित लवङ्ग लता परिशीलन,
कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल,
कुञ्जित कुञ्ज कुटीरे।
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते।"

प्रिय मिलन का आनन्द इस माधव में अत्यधिक सरस हो जाता है। मनभावन की मनमोहकता को राधा ने आनन्दित होकर सौरभ-प्रमत्त वसन्त में ही समझा था।

जरदी छाई लतन लतन पै,
लख बन बाग छतन पै।
हेलन सजे हवेलन ऊपर,
अम्बर कई कतन पै।
वन ऋतुराज आज सब डोलत,
अपनी खास छतन पै।
अरुनारे प्यारे तनु धारें,
रंगन कारे तन पै।
'मन भावन' प्रिय प्रीतम दोऊ,
करें वसन्त वतन पै।

ऋतुराज साज आए आली, भेजे न सन्देसे बनमाली।
मग हेरत दिन जात सखीरी, उन बिन सेज डरी खाली।
दिन नहिं चैन रैन नहिं निंदिया, मदन भूप बांधे पाली,
करत अनङ्ग जोर अङ्ग-अङ्ग पै, सौत कूबरी अब साली,
'मन भावन' बिन स्याम लेय को, मालिन आनधरी डाली।

प्रतीक्षा की पूर्ति जीवन में नवोन्मेष लाती है :—

'आगए दिन वसन्त के नीके,
सुखदायक सबही के।
भासन लगे रूप रासन पें, तोशन भूषन ती के।
रँग गये जरद पटंबर अम्बर भूमण्डल सबही के।
मलै अबीर अरगजा अम्बर, अपने अपने पी के।
'मनभावन' ब्रजराज आज सब, कारज पूजे जी के।

प्रोषितपतिकाओं की दयनीय अवस्था किसको व्यथित नहीं कर देती। बुन्देलखण्ड के लोक-कवि श्री 'लाल' एवं श्री ख्यालीराम की फागों में वसन्त का उद्दीपन-रूप विशेषतः उल्लेखनीय है :—

कैसे वसन्त कटै गुइयाँ,
मोरी वैस है लरिकइयाँ।
द्रुम पैं लता लता पै लतिका,
लटक रही है भू मइयाँ।
कोकिल कूक सुनी ना जावै,
डार-डार बोली टुइयाँ।
कह कवि 'लाल' वलम परदेसें,
बिलम रहो की की छइयाँ।

सिर पर करत वसन्त दवारे, घरै न प्रीतम प्यारे।
सुन सुन कूक कोयलिया केरी, तरसत प्रान हमारे।
कीनौं जोर मदन छाती पैं, कर दये हृदै दरारे।
'ख्याली राम' त्याग हमरवां, नाहक न तरसारे।

श्री वृन्दावन एवं ब्रजलाल की वसन्त विषयक फागों में रीतिकालीन भावनाओं का ही प्रदर्शन है :—

रितु राज साज दल चढ़ आये,
ना बालम विदेशी घर आये।

लै गोनों घर में बैठारो, अपुन विदेसे जा छाये।
तलफत रही सेज के ऊपर, बारी उमर में तरसाये।
'वृन्दावन' कोउ जस करलेवे, जा सामलिया समझाये।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड के लोक-कवियों ने इस का वर्णन गहरी अनुभूति और भावुकता के साथ किया है। श्री रामदासजी, नामदेव तथा बाबूलालजी बरौलिया (छतरपुर निवासी) ने लोक-गीतों के संग्रह में मुझे विशेष सहयोग दिया है। ये महानुभाव स्वयं कवि हैं और लोक-साहित्य के प्रेमी हैं।

बघेलखंड में सर्वश्री हरिदास दुबे, बैजू, सैफू, मुन्नीलाल, रामदास तथा बाल्मीकि लोक-कवि के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। बघेली भाषा का लालित्य

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण

इनकी कविता में पूर्ण रूपेण विद्यमान है। गुढ़ निवासियों को श्री हरिदास की अनेक कविताएँ आज भी याद है। बैजू और सैफू की सूक्तियाँ इस प्रान्त में घाघ और भड्डरी की उक्तियों की तरह समादृत हैं। पं० मुन्नीलाल की गारियाँ बघेलखंड की पृथ्वी को रसमयी बनाती रहती हैं। श्री रामचन्द्र की बानी में लोक-जीवन की अनुभूतियाँ हैं और नवोत्थान की भावना व्याप्त है। आप का काव्य शान्ति-क्रान्ति का समन्वय है। ग्रामों में निवास करते हुए आपने अपनी कविता को प्रकृति के स्वरों से अनुप्राणित किया है। आपके वसन्त-वर्णन में मौलिकता है, पुरातन मान्यताओं के प्रति उदासीनता है :—

फूले आमा बाग बगइचन, वन मा फूले टेसू।
खेतन फूले रहिला बटरा, गोहुन बाल फरेसू।
कूकि रही कोइली मन मउजे, भमरा गावैं गुन गुन।
नाचें तितुली रंग-बिरङ्गी, मस्त सबै अपने धुन।
अइसी साजु सजाइ आइगा, है वसन्त रितु राज।
सबै खुसीमा सजे मगन मन, धरती सुखी समाज।

चाउर चन्दन फल-फूलन लै, गोरी गौर धरे कर,।
पहिर वसन्ती चली उछाहन, पूजन शिव गंगाधर।
कटिया काटत सानी सानत, चारा छोलत गावत।
काटत अरसी मसुरी गावत, रहत किसान खुसीमन।

निम्नस्थ बघेली लोक-गीतों में वसन्त का सुखद वर्णन है—

फागुग मैं न जियऊँ रसमाती,
अहउ कंत घरहूँ ना आये।
बालन विदेसवा मा छाये,
वसंत न लागय कइसे पठवहूँ पाती।
अजहूँ कंत घरहूँ न आये,

अमरैया मा कोइली बोली करै,
सुन सुगना रे।

रंग भरी मोरी देहियाँ,
गमना माँगैं रे।
सुन सुगना रे।

इस प्रकार वसन्त अखिल भूमण्डल का सुषमा-केन्द्र है, रमणीयता का सहज उद्रेक है और उल्लास-विलास का रम्यस्थल है। संस्कृत साहित्य में वर्णित ऋतु राज वसन्त का स्वरूप अत्यन्त मनमोहक है—

आकम्पयन् कुसुमिताः सहकार शाखाः,
विस्तारयन् परभृतस्य वचांसि दिक्षु।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां,
नीहार पात विगमात् सुभगो वसन्ते।

(ऋतु संहार)

हमारी लोकोक्तियाँ

एक संक्षिप्त अनुशीलन

श्री० श्रीचन्द जैन

लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। इनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियां या उलझनों को सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। लोकोक्ति[1] साहित्य संसार के नीति-साहित्य का प्रमुख अंग है। लोकोक्ति में सागर में गागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इनमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं [2]।

सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है[3]।

कहावत में सूत्र प्रणाली होती है। भाव की मार्मिकता घनीभूत रहती है। लघु प्रयत्न से विस्तृत अर्थ व्यक्त करने की इसमें प्रवृत्ति रहती है[4]।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकोक्तियाँ मानव के अनुभवों को प्रकट करने वाले सूत्र हैं, जिनके सहारे मनुष्य अपनी सांसारिक जीवत-यात्रा को सुगमता से पूर्ण कर सकता है। मानव स्वयं अपूर्ण है। पूर्ण केवल परमात्मा हैं। अतः इन लोकोक्तियों में प्रदर्शित सत्य मानवी होने से सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं हो सकते ! श्री स्टीवेन्सन ने ठीक ही कहा है कि हमारे सम्पूर्ण सत्य अर्द्ध सत्य हैं।

---

१. लोकोक्ति-साहित्य का महत्व—लेखक श्री वासुदेवशरण अग्रवाल।
२. लोक वार्ता–सं० लेखक श्री कृष्णानन्द गुप्त।
३. राजस्थानी कहावतें--श्री कन्हैयालाल सहल।
४. लोकोक्ति-साहित्य की पूर्व पीठिका—ले० डा० सत्येन्द्र।

लोकोक्तियां भाषा के सौन्दर्य-साधन हैं, जो उसमें सजीवता और प्रभाव उत्पन्न करते हैं। अतः लोकोक्ति के महत्व को स्वीकार करते हुए आलंकारिकों ने इसे एक अलंकार मान लिया है।

लोकोक्ति लोकप्रिय हो और सुगमता से याद की जा सके, इसलिए यह छोटी होती है और इसके निर्माण में तुकसाम्य का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। इस कथन की पुष्टि में निम्नस्थ कुछ बघेलखंडी तथा बुन्देलखंडी कहावतें पर्याप्त होंगीं।

बघेलखण्डी उक्खान

(१) बाढ़ी नदी मोटान मेहरिया।
 झांकै केतनो रोज डेहरिया॥

(२) साधु संत न लागी तार
 जब खइहैं तब थानेदार।

(३) ढोल मां पोल।

(४) जहां चार कोरी, तहां बात बोरी।

(५) सोन जानै कसे, मनई जानै बसे।

बुन्देलखण्डी कहावतें

(१) बाई के बेर अढ़ाई सेर।

(२) अपुन खांय औरे ग्यान बतांय।

(३) आप खांय हरकत, बांट खाय बरकत।

(४) जी की इतै चाह, ऊ की उतै चाह।

(५) सुनार की ठुक-ठुक, लुहार की घुम घुम।

(६) दीवार में आलो, घर में सालो।

यह तुक साम्य तथा संक्षिप्तता अन्य भाषाओं की कहावतों में भी द्रष्टव्य है। यथा :—

राजस्थानी कहावतें

१—आंख फड़के दहणी, लाल घमका रहणी।
(स्त्री की दाहिनी आंख का फड़कना कष्टदायक है)

२—भूख कै लगावण कोनी, नींद कै बिछावन कोनी।

(भूख में कोरी मोटी रोटी अमृत है, नींद में बिस्तर उपेक्षणीय है)

३—जाओ लाख रहो साख।

(लाखों की क्षति में भी साख रक्षणीय है।)

पंजाबी कहावतें

१—पाई पीसी चंगी, कुड़ी खड़ाई मंदी

(दूसरे का पायली भर नाज पीस देना सरल है, किन्तु अन्य की लड़की खिलाना कठिन है।)

२—सेली पाई पिन्ननी. ना मांगनी ना घिन्ननी।

(भिखारिणी को सहेली बनाना निरर्थक है)

३—लगी हल्द हुई बल्द।

(दुबली लड़की विवाहोपरान्त मोटी हो जाती है)

उर्दू कहावतें

१—दुनिया ठगना मक्कर से, रोटी खाना शक्कर से।

२—मियां बीबी राजी, क्या करेगा काजी।

३—जिसको न दे मौला, उसे दिलाये आसफुद्दौला।

गुजराती कहावतें

१—बाप तेवा बेटा, ने वड़ तेवा टेटा।

(जैसा बाप वैसा बेटा)

२—गारकी पूंजीए तहेवार, उठ जमीए वेवार।

(दूसरों की संपत्ति पर मौज उड़ाना)

३—मोढ़े जी जी, ने अन्तर मां जीजी।

(मुँह में राम बगल में छुरी)

फारसी कहावतें

१—सवाल दीगर, जवाब दीगर।

२—कुनद हम जिस बाहम जिन्स।

३—कबूतर बा कबूतर, बाज बा बाज।

(समान स्वभाव वाले एक साथ रहते हैं। कबूतर कबूतर के साथ, बाज बाज के साथ रहता है)

संस्कृत लोकोक्तियों में तुक साम्य मिलना कठिन है, इनकी संक्षिप्तता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। देखिये : –

१—अति सर्वत्र वर्जयेत

(अति (अत्यधिकता) सदैव त्याज्य है।)

२—अजीर्ण में भोजन विषार

(अजीर्ण में भोजन विष हो जाता है।)

३—जामाता दशमो ग्रहः

(जामाता दशवां ग्रह है।)

संक्षिप्तता तथा तुक साम्य उत्तम लोकोक्ति की विशेषतायें अवश्य हैं, लेकिन उन दोनों का कहावत के साथ अव्ययीभाव सम्बन्ध नहीं है। बहुत सी ऐसी उत्कृष्ट कहावतें हैं जिनमें तुक-साम्य होने पर भी संक्षिप्तता नहीं है। यथा—

पूत बिगाड़ा बाप का, नपियन केर जमीन,
कबहूँ सुघरें ईं नहीं, जइसे करुई नीम।

(पूत—पुत्र, नपियन—नापनेवाले, करुई—कड़आ।)

२—बाँधि कुदारी खुरपी हाथ। लाठी हँसुवा राखे साथ।
काटै घास औ खेत निरावै, सो पूरा किसान कहवावे॥

कहावतों के वैज्ञानिक अध्ययन से बहुत से ऐतिहासिक तत्वों का स्पष्टीकरण हो जाता है। जिस प्रान्त की जो लोकोक्तियाँ होती हैं, वे वहाँ के आचार-व्यवहार तथा संस्कृति की झलक देती हैं। बघेलखण्ड में तमाखू और चूना को मनुष्य विशेष खाते हैं। इसी प्रवृत्ति की परिचायक यह लोकोक्ति है :—

"जिसकी गांठी में चून। उसे मिले तमाखू दून।

इस प्रान्त में दाढ़ी-मूँछ रखने का पहिले विशेष प्रचार था। इस सम्बन्ध में यह कहावत उल्लेखनीय है :—

"बैल सिंगारा, मर्द मुछारा।"

बुन्देलखन्डी कहावतें—'चमार कौ अरस मेंऊँ बेगार' तथा 'नानी तो क्वांरी मर गई, नाना के नौ नौ ब्याव' क्रमश बेगार और बहु-विवाह प्रथा की ओर संकेत करती है।

हमारे विन्ध्य प्रान्त में लोकोक्ति को उक्खान, किहनी, कहनौत, टहूका तथा अहाना कहते है। उक्खान उपाख्यान संस्कृत शब्द का विकृत रूप है। अनेक लोकोक्तियों में सुन्दर कहानियों का समावेश रहता है, इसीलिए कथाओं पर आश्रित होने के कारण उक्खान नाम से लोकोक्ति व्यवहृत हुई। उदाहरणार्थं निम्नस्थ बवेलखण्डीं कहावतों पर विचार कीजिये :—

१—"पुनि पुनि चन्दन, पुनि पुनि पानी,
देवता सरिगे हमका जानी।"

इस कहावत में इस कथा की ओर संकेत है, जिसमें एक शिष्य ने श्री महादेवजी की छोटी श्याम पिण्डी के स्थान पर जामुन का पका हुआ फल रख कर अपने गुरु की क्रोधाग्नि कुछ समय के लिए शान्त की थी।

२—नदिया नारे, बोंग उलारे,
बिन दीन्हें बाँकी बेबाक।

एक समय की बात है कि पटवारी ने एक किसान को लगान न देने के कारण बहुत फटकारा। दूसरे दिन पटवारी उसी किसान को अकेले नदी के किनारे जंगल में मिले। किसान के हाथ में लट्ठ था। पटवारी डर गये और उन्होंने तुरंत ही लगान पा चुकने की रसीद देकर किसान से पिण्ड छुड़ाया। उसी समय से यह कहावत प्रचलित है कि जङ्गल में नदी के किनारे लट्ठ लिए हुए किसान को देख कर पटवारी बिना लगान माँगे, चुकता लगान की रसींद दे देता है।

इसी प्रकार बुन्देलखण्डी अनेक कहावतें हैं। यथा—

१—सूरे की सट्ट लगी तो लगी, नहीं तो भटा गकरियाँ!

२—पानी के दुर पानी में, नाक कटी बेईमानी में।

विषय-निरूपण की दृष्टि से विन्ध्य की लोकोक्तियों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) ऐतिहासिक
(२) धार्मिक
(३) आचार-विचार-सम्बन्धी
(४) स्वास्थ्य-सम्बन्धी
(५) ऋतु-सम्बन्धी
(६) ज्योतिष-सम्बन्धी
(७) कृषि-सम्बन्धी
(८) प्रकृति-सम्बन्धी
(९) पशु-पक्षी-सम्बन्धी
(१०) जाति-संबन्धी
(११) न्याय-नीति सम्बन्धी
(१२) शकुन-सम्बन्धी।

यहाँ कुछ बघेलखण्डी तथा बुन्देलखण्डी कहावतें विज्ञ पाठकों के मनोविनोदार्थ दी जा रही हैं :—

बघेलखण्डी कहावतें

१—आंधर के आगे रोवै, अपना दीदा खोवै।
आंधर—अन्धा, दीदा—दृष्टि।
(हृदयहीन के सम्मुख अपनी दुःख-कथा सुनाना व्यर्थ है)

२—चलनी में पानी भरै, दइउ का दोख धरै।
दइउ—दैव, दोख—दोष।
(स्वयं भूल करते हुए भाग्य को दोष देना)

३—जेही के बैठे छहियां, तेही के मौरी डार।
छहियां—छाया, मौरी—तोड़ना (कृतघ्न बनना)

४—सांपौ मर जाइ लाठिउ न टूटै।
लाठिउ—लाठी (साधन का विनाश न हो और साध्य की सिद्धि हो जाय)

५—ललहा पाइस पनही, जरवा कचरै लाग।
पनही—जूता, कचरै—कुचलना।

(विशेष वस्तु की प्राप्ति पर शान दिखलाना)

६—जइसैं उदई तइसन भान, न उनके चुंदई न उनके कान।

जइसैं—जैसे, तइसन—तैसे, चुन्दई—चोटी, उदई तथा भान—नाम विशेष (दो मूर्खों की समानता)

७—टेटुआ मा चढ़ैं, गठरी मूड़ै धरैं।

टेटुआ—टट्टू, मूड़ै—सिर (मूर्खता का प्रदर्शन)

८—नाच परोसिन मोरे, तो खर घर नाचौ तोरे।

खर—अधिक (व्यवहार पारस्परिक होता है)

९—एक तो गड़रिन दुसरे लहसुन खाये। (दोष पर दोष)

१०—ओही कैंती ठाकुर-दुआर ओही कैंती नौआ-नार।

ओंही कैंती—उसी तरफ, ठाकुर-दुआर—तीर्थ (एक पन्थ दो काज)

११—काज न कल्यान, गमने का ठुनकत बागैं।

गमने—गौना, ठुनकत बागैं—प्रयत्न करना (कार्य न होने पर भी, उनकी फल-प्राप्ति के लिए आतुर होना।)

१२—गरे हेवाल तरी भांय भांय। हेवाल—एक गले का आभूषण, तरी—नीचे, भांय-भांय-शून्यता।

(ऊपरी दिखावा)

१३—जपैं हजारा बोलैं असाख

हजारा—हजार गुरिया का माला। असाख—झूठ. (मुंह में राम बगल में छुरी)

१४—नांव गहागह मुक कुकुरन कस।

(नांव—नाम, गहागह—सुन्दर, (ऊंची दुकान फीका पकवान)

१५—नमैंहा तुपकदार मूड़े मां गोरसी।

(नमैंहा—नया, तुपकदार—बन्दूक चलाने वाला, मूड़े—सिर, (नवशिक्षित का शौक)

बुन्देलखण्डी कहावतें

१—पहरिये खदा, निभैंये सदा।

(मोटा कपड़ा पहनो, ताकि सदा निभ सके)

२—जैसे जाके बाप महतारी, तैसे ताके लरिका।

(सन्तान पर माता पिता के आचरण का प्रभाव पड़ता है).

३—जैसो खाय अन्न, वैसो होय मन्न।

(मन पर भोजन का प्रभाव पड़ता है)

४—रण करो तो बोलो आड़ा, कृषि करो तोर रक्खो गाड़ा।

(लड़ाई बढ़ानी हो तो टेढ़ी बातें करो, और कृषि करो तो गाड़ी रखो।

५—अपनी ढपली अपनो राग। (स्वार्थ भावना)

६—आप खाय हरक्कत, बांट खाय बरक्कत।

(परोपकार से विशेष लाभ होता है)

७—अपने द्वारे कुत्ता नाहर होत।

(अपने घर में निर्बल भी सबल हो जाता है)

८—मच्छर मार कै ऐंठासिंह

(साधारण कार्य करके वीर बनना)

९—अपना पेट हाऊ मैं न देहों काऊ।

(अपना ही पेट भरना)

१०—समय परैं सब करैं रुखाई।

(आपत्तिकाल में सब मुंह फेर लेते हैं।)

११—सो जीते जो पहिले मारै।

(पहिले आक्रमण करने वाले की विजय होती है)

१२—जो सताइ है सो मिट जैहै।

(अत्याचारी का शीघ्र नाश होता है)

१३—सदा न जीवैं जग में कोई।

(संसार में कोई अमर नहीं है)

१४—नीकी करैं लटी उर आवैं।

(भलाई करने पर भी बुराई सिर पर आती है।)

१५—बहिन भली न भैया, सबसों भलो रुपैया।

(रुपया ही सब कुछ है)

मोहन भर पिचकारी मारी

मानव स्वभाव से आनन्दप्रिय है। उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ एवं प्रयास आनन्दोन्मुखी हैं। उल्लास से उसे सहज स्नेह है और विवाद को वह पल-पल में भूल जाना चाहता है। इसी सुख-भोगी भावना से प्रेरित होकर मानव ने इस चराचर विश्व में अनेक ऐसे अवसरों को खोज निकाला है, जिनमें वह अपनी लोलुपता और वासना को सप्राण बनाकर स्वयं को आनन्दित करता है और समाज को भी आनन्दविभोर कर देता है। इस आनन्दानुभूति की प्रेरणा में प्रकृति का पूर्ण सहयोग है। पुरुष एवं प्रकृति का सहचरत्व चिरंतन है। फूली हुई प्रकृति को देखकर मानव-मन मुदित हो जाता है। वसन्त की सुरभित हवाएँ पृथ्वी के मानस को हराभरा कर देती हैं। कुसुमित कलिका रसिक भ्रमर को पागल बना देती है। यह सजीला हुस्न प्रेमी के लिए सुधा से भी बढ़कर होता है। वसन्तोत्सव मदनोत्सव ही है। इसकी प्रशंसा में कवि एवं कलाकारों ने बहुत-कुछ कहा है। हमारे प्राचीन और वर्त्तमान साहित्य के मधुर स्वर इसी उत्सव के रागमय रागों से अनुप्राणित हुए हैं। कामदेव की प्रेयसी रति का सौन्दर्य इसी काल में बेनकाब (आवरण-रहित) हो जाता है; जिसके आलोक में यह जगत् जगमगा उठता है। उर्दू के महाकवि जिगर ने ठीक ही तो कहा है :—

दिल की हर चीज जगमगा उट्ठी।
आज शायद वह बेनकाब हुआ।

होली की बहार में ईश्वर के उपासक भी तो तोबा करना भूल जाते हैं :—

दीवाने हो जाहियदो[1] बहार आई है।
इस फसल में तोबा[2] करूँगा ? तोबा।

१, उपासकों, २. त्याग की प्रतिज्ञा।

इश्क का घाट होली के गुलाल से अधिक चिकना हो जाता है, इस पर अच्छे-अच्छों का पैर फिसलने लगता है :—

इश्क के घाट किस किसको संभलते देखा।
अच्छे-अच्छों का यहाँ पांव फिसलते देखा।

फागुन-चैत में मदनोत्सव मनाने की प्रथा का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। सुवसंतक और कामदेवानुमान इसी उत्सव के भिन्न नाम हैं। कहीं-कहीं इसे चैत्रोत्सव भी कहा जाता है।

"वर्ष-क्रिया कौमुदी में शौवागम से वचन उद्धृतकर कहा गया है कि चैत शुक्ला चतुर्दशी तिथि को मदन-महोत्सव मनाने के प्रसंग में प्रातःकाल एक पहर तक गाने-बजाने के साथ गाली-गुफ्ता बकते हुए और कीचड़ प्रभृति उछालकर यह त्यौहार मनाया जाय। फिर दोपहर में लोग वस्त्राभूषण, माला, गंध, द्रव्य आदि द्वारा साज-सजावट करें। साहित्यिक उल्लेख काफी होने पर भी सभी को मालूम है कि मुख्यतः ऋतु-परिवर्तन से सम्बन्धित इस उत्सव को बहुत दिनों से अलग रीति से मनाने की चाल नहीं है। संभवतः कालान्तर में इस उत्सव का होली के त्यौहार में विलयन हो गया हो।"[1]

होली एक सार्वजनिक उत्सव है। मानव-समाज के आदि युग से यह चला आ रहा है। हमारे आदिवासी भी इस प्रमोदोत्सव को जी खोलकर मनाते हैं। ब्रजभाषा का साहित्य होली की रंगीन पिचकारियों से रंगीन है :—

"या अनुराग की फाग लखो जहाँ रागनी राग किसोर-किसोरी।
त्यों पद्मकर घाली घली, फिर लाल ही लाल गुलाल की झोरी।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहू न केसर रंग में बोरी।
गोरी के रंग में भीजिगौ सांवरौ साँवरे के रंग में भीजिगी गोरी।

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की भोली भुवन-भावना भी होली को देखकर सिहर उठती है :—

काली-काली कोयल बोली,
होली-होली-होली।

१. हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव—श्री मन्मथराय पृ० ४८।

हँसकर लाल-लाल होठों पर हरियाली हिल डोली।
फूटा यौवन फाड़ प्रकृति की, पीली-पीली चोली।
ऋतु ने कवि-शशि के पलड़ों पर तुल्य-प्रकृति निज तोली।
सिहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन-भावना भोली।
(साकेत)

भगवान् कृष्ण शृंगार के देवता हैं। कुंजबिहारी, रसिक शिरोमणि एवं रास-प्रवर सलोने श्याम की स्मृति वसन्त में तो सबको ही आनन्दित करती है। ब्रज की होली प्रसिद्ध है। ब्रज मंडल श्याम को रंगभरी अठखेलियों और श्यामा की रंगीन पिचकारियों से सदैव रागरंजित है। हमारे प्रान्त में फागों को गाकर होली की मस्ती प्रकट की जाती है। राधा-कृष्ण की लीला, प्रेम-मिलन, वियोग-व्याकुलता एवं मदमाती वसन्त ऋतु का मदिर यौवन ही इन रसिक गीतों का वर्ण्य विषय है।

होली में चोली का रंग वसन्ती हो जाता है। इस मिलन की बेला में सब प्रेम-सागर की डुबकियाँ लेने लगते हैं :—

रंग रओ वसन्ती चोली कौ,
मौसम आगयो होली कौं,।
बागन विटप बंगलन बागन,
फूलो फूल अमोली कौ।
पंछी सबै संग मिल डोलै,
सोर मचावै बोली कौ।
कहैं कवि लाल वसन्त, तमंचा,
घलन लगो बिन गोली कौ।।

मन की लालसाभरी ललक होली में ही पूरी होती है। इसमें सब कुछ क्षम्य है।

'मन मानी छैल करौ होरी,
सब लाज सरम डारो टोरी।

महिना मस्त लगौ फागुन कौ,
अब न कोउ दैहैं खोरी।
अब डर नहीं पुरा पाले कौ,
लड़ैं न सास-ननँद मोरी।
लिपट-लिपट ऊपर रंग डारौ,
मलौ कपोलन में रोरी।
'गंगाधर' ऐसे ओसर में,
मन की ललक पुजै तोरी।

इधर रंगीले श्याम पिचकारी मार रहे हैं। उधर उनकी प्यारी गोपिकाएँ उल्लसित होकर उनकी कला की प्रशंसा कर रही हैं :—

मोहन भर पिचकारी खींचें,
मारी जोवन बीचें॥
मारी पिचकारी लौट गई सारी,
हम देखत रईं नीचें॥
हाथ लगाय भवन के भीतर,
चलीं गईं दृग मीचें॥
इतने में पीछे पर मोहन,
लगे गुलाल उलीचें॥
'गंगाधर' मचरई गोकुल में,
रंग केसर की कीचें॥
ऐसी पिचकारी घालन,
कहाँ सीखलई लालन॥
तक के तान दई बेंदा पै,
ढुरक लगी है गालन॥
अपुन फिरें रंग रस में भीजें,
कि जै रहे ब्रज बालन॥
मारी चोट ओट लै कड़ गई,
लगी करेजे सालन॥

माघो बनी राधिका 'ईसुर',
राधा बनी गोपालन ।।

उड़ते हुए गुलाल से आकाश लाल हो गया है। नंदबाबा के महल का दरवाजा आज धमार की धूम से ध्वनित है। राधा सामलिया को घेरे खड़ी है। होरी की चहल-पहल है—

राधा सामलिया खाँ घेरे,
होरी होय सबेरे।
एकें लिये फूल के गजरा,
एकें करवा जोरें ।।
उड़त गुलाल लाल भए बादर,
नंद बाबा के दोरें ।।
एकें सखी अतर लिये ठाड़ी,
एकें केसर घोरें ।।
'ईसुर' धूम धमारन माची,
ब्रज गलियन की खोरें ।।

अबीर की झोली को लटकाए हुए श्यामा राधिका को बुला रहे हैं। मानिनी राधा चुप है। अवसर देखकर कृष्ण ने प्यारी राधा के अंगों पर रोरी मल ही तो दी।

तुम बिन कड़ी जात जा होरी,
श्री वृषभानु किसोरी ।।
प्रीति लगाय प्रान तरसाए,
हिरदे करी कठोरी ।।
टेर रहे वृषभानु लली खाँ,
भरे अबीरन झोरी ।।
आगे आय मिलौ हँस-हँस कैं,
हो वें चूमा चोरी ।।
मुरलीधर घाटी के अंगन,
मलत स्याम रे रोरी ।।

पति-वियोग-विह्वला कामिनी को होली का रंग अप्रिय लगता है।

हमपै नाहक रंग न डारौ, घरै न प्रीतम प्यारे।
फीकी फाग लगत बालम बिन, अपने मनें बिचारौ।
असई ज्वाला उठत बदन में, नाँहि जरे पै जारौ।
केसर अतर गुलाब न छिरकौ, पिचकारी ना मारौ।
ईसुर हम पै हाल दिनन में खेंचे स्याम किनारौ।

प्रेमी की याद होली में अधिक सताती है। दीवाना दिल इसी समय अपनी सुखद स्मृतियों में तड़पने लगता है। अटा पर खड़ी हुई एक यौवनोन्मत्ता होली की पिचकारियों के रंगों को देख रही है। उसका मन उदास है। पूछने पर वह अपने स्वप्न की बात कह देती है :—

दिल डारें अटा पै काय ठाड़ी—

काहे ठाड़ी कैसी ठाड़ी दिल डारे अटापै काहे ठाड़ी।
कै तोरी सास नदँद दुख दीनी, कै तोरे सैंयां ने दई गारी।
ना मोरी सास ननंद दुख दीनी ना मोरे सैंयां ने दई गारी।
मायके के पार सपने में दिखे आई हिलोर फटे छाती।

श्याम के दर्शन के लिए उत्सुका एक गोपिका की मनोव्यथा निम्नस्थ फाग में कितनी सच्ची है :—

जो तन भओ दूबरो कब से,
मित्र बिछुर गए जब से।
ना काहू ने मिल दए हैं,
करै निहोरा सबसें॥
सारी रात अरज चंदा से,
सब दिन सूरज खाँ से॥
'रसिया' कह दोई नैन हमारे,
लगे श्यामरी छब सें॥

रसमाती एक विरहिणी को क्षण-क्षण में होली की सुहावनी रात में अपने पति की याद आ रही है :—

फागुन मैं न जियउं रसमाती,
अजहूँ कंत घरहूँ न आए।
बालम विदेसवा का छाए,
बसंत न लागय कइ से पठावहुँ पाती।
अजहूँ कंत घरहूँ ना आए।
सूनी सेजरिया जियरा घबड़ावइ
विरहा सतावइ आधि रात।
सब के महलिया मा दिअना वरतु हइ।
मोरे लेखे जग अंधियार।
सबके महलिया मा धूम मची हइ।
मोरे लेखे कांदई कीच।
कंत घर हूँ नाहिं आये।

(बघेली गीत)।

ढोलक, मजीरों और झाँझों के मधुर स्वरों के साथ गाए गए होली के ये गीत बड़े ही कर्णप्रिय लगते हैं। एक तरफ इनमें अतृप्त मानवीय भावनाएँ हैं, तो दूसरी तरफ रासबिहारी नटवर श्याम की लीलाएँ अंकित हैं। रसीली होली की मादकता में भगवान राम और लक्ष्मण भी झूमने लगते हैं।

राजा बल के द्वारें मची होरी।
कोना के हाथ ढुलकिया सोहै कोना के हाथ मजीरा।
रामा के हाथ ढुलकिया सोहै, लछमन के हाथ मजीरा।
कोना के हाथ रंग की गगरिया कोना के हाथ अबीर झोली।
राम के हाथ रंग की गगरिया लछमन के हाथ अबीर-झोली।
राजा बल के द्वारें मची होरी।

होली की प्रतीक्षा स्नेह की पूर्ति के लिए न मालूम कितने विरही कब से करने लगते हैं। मुरलीधर मोहन की अनोखी प्यास होरी के रस-रंग में ही शान्त हो पाती है :—

हित लागो कुंवर किशोरी को, मोहन से रावा गोरी को ।
चलन लगो दिन पै दिन मारग नए नेह की डोरी को ।
दरसत बंक विलोकन में हो मजा कछू चित चोरी को ।
बढ़त अनन्द चन्दमुख निरखत, जैसे चित्तचकोरी को ।
'मनभावन' सुख पूर होय सब, समयो पावें होरी को ।

खेतों में लहलहाते गेहूँ और चने के पौधों को देखकर हमारे किसान फूले नहीं समाते । उनका आनन्द फाग, बसन्त, राई, रसिया, रावला, लेद आदि गीतों में शब्दायमान होता है । होली की आग शीत की कठोरता को नष्ट कर देती है । फागुन की हल्की गुलाबी ठंड जीवन में नित्य नई जवानी भरती रहती है । गोरे गालों पर लगा हुआ गुलाल किसको नहीं लुभाता ?

इस प्रकार होली के गीत हमारी रसिकता के सच्चे उदाहरण हैं ।

प्रहेलिका—एक परिचय

अनादिकाल से मानव अपने विषम जीवन की कथा को भूलने का प्रयत्न करता आ रहा है। सांसारिक बन्धनों से जब वह ऊब जाता है तब आमोद-प्रमोद के साधनों के अन्वेषण में वह प्रयत्नशील होकर आकाश-पाताल की ओर देखता है। सुखी बनने की यह मानव-प्रवृत्ति चिरन्तन है। एकाकी ईश्वर ने शक्ति की सृष्टि करके अपने नीरस जीवन को सरस बनाया था। हमारे ग्रामीण भाइयों ने भी अपने परिमित उपकरणों के उपयोग से विविध मनोरंजन को एकत्रित किया है और अपनी थकी हुई जिन्दगी को नवीन उत्साह दिया है। पहेलियों से हमें अधिक-से-अधिक आनन्द-लाभ होता है। जिस प्रकार लोक-कथाएँ हमारे ग्राम्य-जीवन की विगत स्मृतियाँ है उसी प्रकार ये प्रहेलिकाएँ ग्राम-निवासियों की तीक्ष्ण बुद्धि मौलिक सूझ एवं उर्वरा कल्पना-शक्ति की परिचायिका हैं। सचमुज इन पहेलियों में परिपक्व ज्ञान प्रतिबिम्बित होता है। उनके अध्ययन से प्रकट होता है कि हमारे निरक्षर ग्राम-वासियों ने जीवन के प्रत्येक पहलू को गम्भीर दृष्टि से देखा है। जिन वस्तुओं को हम तुच्छ समझते हैं, उनको ही इन भोले भाले मानवों ने अपने जीवन की अमर साधना का उपकरण माना है। ये पहेलियाँ केवल मनोविनोद का साधन नहीं हैं, अपितु सामान्य ज्ञान एवम् सांसारिक अनुभवों को विशुद्ध बनाने में इनका विशेष हाथ है और रहेगा। ऐतिहासिक तथ्य और पुरातन सभ्यता के अनेक अङ्ग इनमें गुम्फित हैं। हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता इन पहेलियों में साँसे लेरही है। आज भी हम इनके द्वारा अपने इतिहास की बहुत-सी रेखाएँ खींच सकते हैं; अपने विस्मृत आदर्शों की धूमिल भावना को स्पष्ट बना सकते हैं और उनके भावुक एवं कल्पनाशील हृदय को जान सकते हैं, जिनको हमने बहुत समय तक भुलाया था और तिरस्कार की दृष्टि से देखा था। हमारे ग्राम हमारे जीवन की ज्योति हैं। मधुर प्राणों की साँसे हैं, प्रबुद्ध आत्मा के स्वर हैं और उन्नत

प्रासादों का नींव हैं। ऐसी परिस्थिति में ग्राम्य-साहित्य हमारे जन-साहित्य की आधार-भूमि है। इस निबन्ध में मैं पहेलियों की सार्थकता पर विचार करने का प्रयास करूँगा।

"जीवन की ठोस भौतिकता से ऊब कर समाज को मनोरंजन की आवश्यकता होती है। ऐसे समय में भिन्न-भिन्न मस्तिष्क मनोरंजन के साधन जुटाने की ओर दौड़ पड़ते हैं। कल्पना की ऊँची उड़ानें, पहेलियाँ, चुटकुले आदि मनोरंजनार्थ ही गढ़े जाते हैं। जन-समाज में मनोरंजनार्थ आदि काल से यही भावना रही है, किन्तु युगों के अन्तर से उन साधनों के स्वरूपों में परिवर्तन होते रहे हैं। ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जिसे अपने बचपन, जवानी या बुढ़ापे में कभी भी मनोरंजनार्थ पहेलियों को बुझाने अथवा पहेलियाँ प्रस्तुत करने का मौका न मिला हो। पहेलियों में देश-काल का प्रतिबिम्ब मिलेगा। न केवल इतना ही, पहेलियां कोरे मनोरंजन के निमित्त नहीं होतीं, किन्तु बुद्धि की परख करने के हेतु भी होती हैं। एशिया के राजाओं के दरबार में पहेलियों का बुझना बड़े महत्व का मन रंजन समझा जाता रहा है। अरेबियन नाइट्स और दूसरे किस्सों में इस सम्बन्ध में अनेक संकेत प्राप्त हैं। आज भी भारतवर्ष के गाँवों में प्रायः एक टोली दूसरी टोली को पहेली बुझाने के लिये ललकारती है।[१]

संस्कृत साहित्य में प्रहेलिकाओं का भारी भण्डार है। प्रत्येक जन-पदीय साहित्य में पहेलियों का महत्वशाली स्थान है। लोक-सहित्य का प्रहेलिका अंश अनेक दृष्टियों से अध्ययन की वस्तु है। गाँवों में खास करके हमारे दादा हुक्का पीते हैं, पान चबाते हैं अथवा तमाखू खाते हैं और बच्चे कथा-कहने अथवा पहेलियाँ बुझाने के लिए उन्हें परेशान करते हैं। रसीली कथाओं को सुनाकर और पहेलियों के उत्तरों को बनाकर या बूझ कर ये हमारे पुरातन देवता काली रातों की भयानकता को रसपूर्ण करते रहते हैं। प्राचीन काल में शास्त्रार्थ-प्रणाली में बुद्धि-परीक्षण की जो भावना सन्निहित थी वही बात हम प्रहेलिका में देखते हैं। ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं जिनसे प्रकट है कि स्वयंवरों में कठिन से कठिन पहेलियाँ बुझाने के लिए रखी जाती थीं, और सफल युवक ही कन्या के वरण योग्य माना जाता था। व्याह के अवसर पर

१ मालवी लोक गीत—श्री श्याम परमार पृ॰ ४६

दूल्हे को अपनी सहचरी का सान्निध्य पहेली बुझाने पर ही मिलता है, ऐसी परिपाटी आज भी हमें कई प्रान्तों में देखने को मिलती है। शाही दरबारों में सत् कवियों एवं मन्त्रियों का चुनाव प्रहेलिकाओं के उत्तरों से भी किया जाता था। ऐसा उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। महाकवि कालिदास का सम्मान गूढ़ प्रश्नों के उत्तर देने से ही बढ़ा था बीरबल की चतुरता का प्रमाण उसके गंभीर उत्तर ही थे। 'भारत के मूल निवासियों में से मंडला के गौंड़ और प्रधान तथा बिरहौर जातियों के विवाह के अनुष्ठानों में पहेली बुझाना भी एक आवश्यक बात मानी गई है।'[1] पहेलियों के विषय अनेक हैं। डाक्टर सत्येन्द्र ने इनके विषयों को साधारणतः सात वर्गों में बाँटा हैं—

(१) खेती सम्बन्धी—इसमें आते हैं—कूआ, पटसन, मक्का की भुटिया, मक्का का पेड़, हल जोतना, चाक, खुरपा, चर्स, पटेला पुर आदि।

(२) भोजन सम्बन्धी—इसमें आते हैं–तरबूज, लाल मिर्च, पूआ, कचौड़ी, बड़ी, सिंघाड़ा, खीर, पूरी, मूली, गेहूँ, आम, ज्वार का दाना, बेर, अनार, कचरिया, गाजर, जलेबी आदि।

(३) घरेलू वस्तु सम्बन्धी—इसमें आते हैं–दीपक, हुक्का, जूती, लाठी, जीरा, कैंची, पान, चक्की, खाट, सुई, डोरा, किवाड़, आग, रुपया, काजल, कलम महँदी आदि।

(४) प्राणी सम्बन्धी—इसमें आते हैं—जूँ, बर्र, चिरौटा, दीपक, खरगोश, ऊँट, हाथी, भैंस, भौंरा आदि।

(५) प्रकृति सम्बन्धी—इसमें आते हैं—दिन-रात, ओस, तारे, चंदा, सूरज, ओला, करील, आकाश, बिजली, आदि

(६) अंग-प्रत्यंग-सम्बन्धी—इसमें आते हैं, दाढ़ी, नाक, शरीर, जीभ दाँत, आँख, सींग, कान आदि

---

१. Man in India के An Indian Riddle Book अंक (December 1953) में श्री बेरियर एलविन तथा डबल्यू० जी० आर्च लिखित नोट आनदी यूज आव रिडिल्स इन इंडिया।

(७) अन्य—इसमें आते हैं—उस्तरा, बन्दूक, चाकू, बर्छी, आरी, रेल, तवला, मृदंग, कुम्हार का अवा आदि। (ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन)

यहाँ कुछ पहेलियाँ दी जा रही हैं। कहानी, किहनी, कहनूत, बुझौअल, आदि कई नामों से पहेली का उल्लेख होता है।

(१) तनक सी टुकिया टुक टुक करे।
लाख टका की वंज करे। (सुई)

२—एक फूल ऐसा न राजा के राज का।
न माली के बाग का। (चाँद)

३—तनक सौ लरका ठूलमठूल,
करया घोती माथे फूल। (मुर्गा)

४—घर्र घर्र नदी जाय।
चंदन चौक पूरत जाय। (चक्की)

५—तनक सौ सोनों सब घर नोनों। (दीपक)

६—बाप मताई कारे केवला से,
बिटिया जाई पठोला सी। (कड़ाई की पूड़ी)

७—एक रूख ऐसौं दरयानो।
तरें सेत ऊपर हरयानो। (मूली)

८—एक चिरैया रंग बिरंगी,
बैठीं बर की डार।
लाल पटी को जो रो पैरें,
काजर की झलकार। (मिर्च)

९—एक रूख अदबरो
जाके नैचें जल भरो। (हुक्का)

१०—तनक सो लरका बम्मन कौ।
तिलक करै चंदन कौ। (उरदा)

११—ठांडे हिरना चिक-चिक करें।
न अन्न खांय न पानी पियें। (किवाड़)

१२—पैल भईं ती बैनें, फिर भये ते भैया।
भैया ऊपर बाप भए हैं, फिर भई हैं मइया।
(महुआ)

१३—एक रूख में पथरई पथरा।
(कंथ का वृक्ष)

१४—चार पावने चार लुचई।
एक एक के मौ मे दो दो दईं। (चारपाई)

१५—एक जने के पाँच मोड़ा (ऊँगलिया)

१६—चाँद सा मुखड़ा सब तन जखमी।
बिना पैर वह चलता है।
सबका प्यारा राज दुलारा,
साल साल में बढ़ता है। (रुपया)

१७—देख सखी मैं बड़ी भोरी।
हाथ छुए की लग गई चोरी।
(ओला)

१८—सावन भादौं भौत चलत है।
माव पूस में थोरी।
सुनियो री ए चतुर सहेली।
अजब पहेली मोरी। (नाबदान)

१९—एक खेत में ऐसा हुआ।
नीचे बगुला ऊपर सुआ॥ (मूली)

२०—इत्ते से मनीराम इत्ती सी पूँछ।
सटक चले मनीराम पकर चली पूंछ।
(सुई और डोरा)

२१—चार चक्र चलैं दो सूप चलैं।
आगे नाग चलै, पाछें गोह चलैं। (हाथी)

२२—सँकरी कुइया सींक न जाय।
हिन्ना पानी पी पी जाय। (थन)

२३—वन से आई बाँदड़ी,
घर मां कान छेदाय ।
दूध भात का भोजन करैं,
फरिका परा मेलान । (पतरी)

२४—एक टाठी भर राई ।
सलगे पर छितराई । (तरइयाँ)

२५—छोटवादी फुदकी, फुदकत जाय ।
कहाँ जइहे फुदकी, रतनपुर जाव ।
राजा जो सुनि है, फरा डरि है पेट ।
कढ़ि अइ कोदई, बोबा डरि है खेत । (रुपया)

२६—पृथवी भरे मां एक थे गोला । (सुरिज—सूर्य)

२७—गाय मरखनी दूधा मीठा । (सिंघाड़ा)

२८—मोरे घर माँ भोलइया लुकान । (पनही—जूता)

२९—फरै न फूलै नवै न डार ।
या फल खावै सब संसार । (नोंन—नमक)

३०—फरै न फूलै ।
झउअन टूटै । (राख)

३१—पेंड न पत्ता ।
ऊपर बड़ा छत्ता । (अमर बेल)

हमारे आदिवासियों की संख्या पर्याप्त है। वे वनों में रहते हैं। उनका जीवन पशु-पक्षियों के साथ ही बीतता है, फिर भी अपने मनोरंजक गीतों से वे जङ्गल को मङ्गलमय कर देते है। कभी-कभी ये भी आपस में पहेलियाँ बुझाया करते है। निम्नस्थ पहेलियाँ मुझे अमरकण्टक के घोर कानन में रहने वाले आदिवासी भाइयों से प्राप्त हुई हैं :—

(१)

चार चउतरा असी बजार ।
सोरह घोड़ मा एक असवार ।

आय लु लू पाय लु लू।
पानी मा डेराय लु लू। (सूरज-सूर्य)

(२)

सन केर सुतरी, मयन के फाँदा।
दँहकत आवै, विजहरा के नांटा। (शेर)

(३)

कारी गाय करंगल बाछा।
ढील दे गाय विहर जाय नाटा। (बन्दूक गोली)

(४)

नरसत बाप पितिङ्ग महतारी।
फुलवर बहिना मधुकर भाई। (कद्दू)

ये भोले भाले आदिवासी नृत्य-प्रेमी हैं। इनका एक सैला नृत्य है। इसे नाचते हुए वे कुछ ऐसे गीत गाते हैं जिनमें पहेलियाँ रहती हैं ये पहेली गीत कहे जाते हैं। कुछ में तो उत्तर रहता है और कुछ में उत्तर पूछा जाता है।

(१)

तारी नाके ना मोर नाना रे नाना।
तारी नाना मोर नाना रे।
कारी चिरई के कारी खोदरो,
कारी चरन बर जाय।
पाथर चढ़के पानी पीबैं,
डोला चढ़ घर जाय।
जनमिया लेतई नौआ घर तोरा आय।
(उत्तर—उस्तरा)

(२)

तारी नाके ना मोर नाना रे नाना,
तारी नाना मोर नाना।

जंगल चढ़ बकुला बिना जीभ के चारा चरै।
पानी पियत मर जाय।
जनमिया लेवई मोर पावक देव आय।
(उत्तर—अग्निदेवता)

डा० एलविन ने इसका अङ्गरेजी में इस प्रकार अनुवाद किया है :—

The crane climbs up the mountain
And feeds on grass without tongue.
It dies when it drinks water.
It is the God fire.[१]

मालवी भाषा की पहेलियाँ बड़ी सुन्दर होती हैं। इनमें कल्पना का माधुर्य है और हृदय की सरसता पूर्ण रूप से विद्यमान है :—

(१)

"मोती बेराना चन्दन चौक में,
ओ मारूजी म्हने सोरया नी जाय।
हटीला डावड़ा म्हारी प्याली रो अरथ बताव ?"
(उत्तर—तारे)

(२)

जल भरी झारी म्हारा सिराने धरी।
सारी सारी रात में तो तीसाँ मरी।
बूजो हो बेबई म्हारी पारसी।
(उत्तर—इत्र की शीशी)

(३)

सोले हाथ की साड़ी म्हारा सिराने धरी।

१ Folk Songs of the Maikal Hills.—By Verrier Elwin and Shamrao Hivale P. 72.

सारी सारी रात में ठण्डों मरी।
बूजो हो बेबई म्हारा पारसी।[1]

(उत्तर—जाजम-दरी)

साधारण पहेलियों के अतिरिक्त मुझे कुछ कथात्मक पहेलियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिनमें एक विशेष कथा रहती है। ये कथाएँ लोक-जीवन को व्यक्त करती हैं।

(१)

मैं आई ती तोखां लैनें।
तेंने पकर लओ मोखों।
तू छोड़ दे भइया मोखां।
चली जाऊं मैं घर खों।

इसमें एक पनहारिन की कथा है। सावन का महीना था। वह जल भरने को तालाब जा रही है। इतने में वर्षा आगई। एक पेड़ के नीचे खड़ी होकर वह आकाश से बोली। कहा जाता है कि 'भैया' शब्द सुन कर आकाश हँस पड़ा और वर्षा बन्द हो गई।

(२)

चार पैर को हौआ आगओ।
पूँछन लागो मोसों।
कितै गओ दो पैर को साहू,
त्रिड़ गओ तौ जो मो सों।

इसमें एक शेर और ठाकुर की कहानी गुम्फित है। शिकार खेलते हुए ठाकुर को देख कर एक सिंह जङ्गल में छिप गया था। रात में वह उसके घर गया और प्रार्थना की कि वह उसे न मारे। घर में आए हुए शेर का ठाकुर ने सम्मान किया और शिकार न खेलने की उसने प्रतिज्ञा की।

१ मालवी-लोक गीत—श्री श्याम परमार पृ० ४७

(३)

घरै बँदत तीं तीन भैंसिया।
औ कुलवन्ती नारी।
चाकरिया जिन जाओ पदन जू
हटकत तौ महतारी।
डबा डब डब!
रोटी हो तौ ई में।
लचका हो तौ ई में।

इसमें एक पदनजू नामक अहीर की कथा का संकेत है। माता के मना करने पर भी वह घर से बीस रुपए लेकर नौकरी की तलाश में देश-विदेश फिरता रहा। नौकरी उसे न मिली और विवश होकर पदनजू को भीख माँगनी पड़ी।

(४)

मोय छोड़ दे कारे चोर।
काहे लपकौ मोरी ओर।

यहाँ एक साधु की कथा का उल्लेख हुआ है। गंगा के किनारे एक साधु खड़ा था। शीतकाल था। उसने जल में बहते हुए एक काले रीछ को देखा उसे कम्मल का भ्रम हुआ। कूद कर उसने उसे पकड़ लिया। भ्रम दूर होने पर उसने रीछ से छुटकारा चाहा, लेकिन रीछ के साथ साधु भी गंगा में डूब कर मर गया।

(५)

काँधे धनुस हाथ में बाना।
कहाँ चले दिल्ली सुलताना?
बन के राव भात का खाना।
बड़े की बात बड़े पहचाना।
तुक्क तुक्क तायें तायें।
तुम लड़ई हम बैना।

इसमें बेहना और सियार की कथा है। बेहना को देख कर सियार को शिकारी का भ्रम हुआ। बेहना सियार को शेर मान बैठा। दोनों ने आपस में एक दूसरे की जी खोल कर प्रशंसा की। पास में आने पर असली भेद खुला।

(६)

कहाँ जात ऊँट मलकन्त,
काहे न बोलत भोंदूचन्द ?
बीनन वारी बीन कपास,
तोरी मोरी एकई सास।

यहाँ कपास बीनने वाली एक छबीली युवती की कहानी है। खेत में जाते हुए उसने एक युवक को देखा। वह ऊँट पर सवार था। उसकी आँखों से रसीलापन टपक रहा था। युवती ने कुछ पूछा, लेकिन युवक का उत्तर गहरा था। वह बोला—'तुम अपना काम करो तुम्हारी सास ही मेरी सास लगती है।'

(७)

सुन्दर झिरिया अति भरी।
गन्ध उठी तरुनाय।
वे वन बैसे सूखिए,
फिर न पियें हरिनाय।
लाल जी जें पौबारा—

सुन्दर झिरिया देख कें,
सिंह गयौ वा तीर।
ऊपर तोता बोलियो,
फिर न पियौ वह नीर।
लाल जी जे पौबारा।....

इन पंक्तियों में एक कथा ध्वनित हो रही है जिस में पति-पत्नी का मन-मुटाव केवल शंका पर आधारित था। पति को अपनी स्त्री के चरित्र पर सन्देह

हुआ और उसने उससे बोलना छोड़ दिया। तत्पश्चात् तोते के बोलने पर शेर का पानी न पीना जान कर पति का भ्रम दूर हुआ। यहाँ सुन्दर झरिया सिंह, तोता, एवं नीर शब्दों का प्रयोग साभिप्राय है।

सुन्दर झिरिया से सुन्दर युवती की ओर संकेत है। शेर ठाकुर की ओर इशारा करता है। तोता घर के सम्बन्धी का परिचय दे रहा है। नीर—भरे हुए यौवन का प्रतीक है।

(८)

चार पाम की चापड़ चुप्पे, बापै बैठी लुप्पो।
आई सप्पो लैगई लुप्पो, रह गई चापड़ चुप्पो।

यहाँ एक कथा की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। भैंस नदी में नहाकर बाहर निकली। उसकी पीठ पर एक मेंढ़की आकर बैठ गई। भैंस के मना करने पर भी वह नहीं हटी। भैंस सूर्य भगवान की पूजा करने लगी। इतने में एक चील झपटी और मेंढ़की को लेकर उड़ गई। कहते हैं कि सूर्य की ओर मुँह किए हुए पशु की पीठ पर मेंढ़क या मेंढ़की नहीं बैठती हैं। उन्हें चील का डर लगा रहता है। धार्मिक या पौराणिक एवं ऐतिहासिक कहानियों पर भी कुछ पहेलियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं। श्लेष अलंकार पर निर्मित प्रहेलिकाएँ बुद्धिपरक होती हैं। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की पहेलियों का बाहुल्य है।

पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन है। वह ऐसा वर्णन है जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में बहुधा वस्तु-उपमान के रूप में आता है। यह स्वाभाविक ही है कि गाँव की पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिये गए हैं............पहेलियाँ एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाली उपमानों से निर्मित शब्द-चित्रावली है, जिसमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि किसका चित्र है। पर इससे यह न समझना चाहिये कि उपमानों द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है वह अस्पष्ट होता है पर उसमें संकेत इतना निश्चित होता है कि यथा संभव उससे किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं हो सकता।"[१]

---

१. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—पृष्ठ ५२७।

"साहित्य-दर्पण के प्रणेता विश्वनाथ रस विरोधी होने के कारण प्रहेलिका को अलंकार नहीं मानते, किन्तु उसके वैचित्र्य को स्वीकार करते हुए आपने च्युताक्षरा, दत्ताक्षरा तथा च्युतदत्ताक्षरा उसके तीन भेदों की चर्चा की है। आचार्य दंडी ने साहित्य-दर्पण-कार के इस मत को स्वीकार करते हुए 'प्रहेलिका' को क्रीड़ागोष्ठी तथा अन्य पुरुषों के व्यामोहन के लिए उपयोगी बतलाया है। दंडी ने तो समागता, वंचिता, व्युत्क्रांता, प्रमुदिता, समानरूपा, परुषा, संख्याता, प्रकल्पिता, नामांतरिता, निभृता, समानशब्दा, सम्मूढा, परिहारिका, एकच्छन्ना, उभयच्छन्ना, संकीर्णा—इसके सोलह भेदों का भी उल्लेख किया है।"[1]

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भोजपुरी पहेलियाँ सरसता एवं उक्ति वैचित्र्य से परिपूर्ण होती हैं :—

(१)

उजर कटौरा उजर हाथ।
ल (अ) जवाने हाथे हाथ। (रुपया)

(२)

एक पहलवान के नकवे टेढ़। (बूँट, चना)

(३)

चारि अड़र गड़र चारि इमिरत भाँजन।
दुई सूखल काठी एक हाँकेल माँछी। (गाइ, गाय)

(४)

राजा का बाग में खम्भ गाड़ल बा,
केहु लेत केहु देत, केहु टक्क लवले बा। (हूँका-हुक्का)

(५)

हति चूकि फुदुकी फुदुकति जाइ।
सगरे बाँनारस लुटले जाइ। (आगि-आग)

---

१. भोजपुरी पहेलियाँ—डा० उदयनारायण तिवारी, एम.ए.,डि० लिट (हिन्दुस्तानी-अक्टूबर—दिसम्बर १९४२) पृ० २६६

खुसरो की पहेलियाँ प्रसिद्ध हैं :—

एक नार ने अचरज किया, साँप मारि पिंजड़े में दिया।
जों जों साँप ताल को खाए, सूखे ताल साँप मर जाए।

(दिया-बत्ती)

(२)

एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उसमे एक न गिरे।

(आकाश)

श्री सुकुमार हलधर बी० ए० ने 'हो' आदिवासियों की पहेलियों का अंग्रजी में अनुवाद प्रस्तुत किया है। (देखिए—

The Journal of the Bihar and Orissa Research Society, June 1917 Vol. III, Part II.

इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन निरक्षरों की अनुभूति एवं सूक्ष्म साक्षरों से भी कई अंशों में मौलिक है:—

(1)

The tree bears fruits one at a time, but the fruits ripen all at once. (Pottery)

(2)

It is a thing the upper part of which is straight and the lower crooked. (A spade)

(3)

There is black paddy growing in a white-field.

(Writing in black on white-paper)

(4)

In the morning it walks on all fours at noon on two and in the evening on three.

(The stages of men's life—Infancy, manhood and senility)

(5)

The white stones which slip straight in.

(Cooked Rice)

(6)

Born in the depths of night, it quits its birth-place at cock crow. (The Mahua flower)

(7)

There is one who keeps vigil all night.

(Star)

(8)

There is a house all the cattle wherein have curved horns.

(A Tamarind tree)

हो भाषा में पहेली को कुदमू अथवा चपकद कहते हैं। चपकद चकद का बिगड़ा रूप है इसका अर्थ मिथ्या अथवा असत्य होता है।[1]

विभिन्न लोक-भाषाओं की पहेलियों के अध्ययन से दृष्टि-कोण के भिन्नत्व एवं दर्शक की भावना का भी ज्ञान सुगमता से हो जाता है। महुआ एक रसपूर्ण फल है, इसका उपयोग सर्वत्र देखा गया है। हमारे ग्राम-निवासी अपनी गरीबी के दिनो को इसके सहारे काटते हैं। महुआ को लेकर प्रायः सब भाषाओं एवं बोलियों में पहेलियाँ बनी हैं। कुछ में समानता है तो अनेक में भिन्नता। उल्लेख अलंकार के अन्तर्गत यह भिन्नत्व माना जा सकता है।

बुन्देली भाषा में महुआ पर पहेली इस प्रकार है:—

पैल भई ती बैनै, बैनै, फिर भए ते भैया।
भैंया ऊपर बाप भए हैं, फिर भई है मइया।

एक वस्तु के लिग-परिवर्त्तन का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

बघेली में सांप और महुआ को लेकर निम्नस्थ कथात्मक पहेली प्रचलित है:—

टीप का टपार का, कपार काहे फोरे रे।
सेंगर अइसा मोंगर अइसा, रात काहे रेंगे रे।

महुआ की रसमयता पर यह कैसी सुन्दर उक्ति है:—

[1] The Ho name for riddle is Kudmu or Chapkad, the latter being an inflexion of chakad—false or untrue.

रस भरा है मेरा गाल।
रस रहता है तीनों काल।।

अपने मित्र से एक आदिवासी ने इसी महुआ को देखकर पूछा था—"बताओ वह कौन है जिसका जन्म गहरी रात में होता है और प्रातःकाल होते ही वह अपने जन्म स्थान को छोड़ देता है। भोजपुरी में महुआ के संबन्ध में एक पंडित और युवती को मनोरंजक वार्त्ता प्रसिद्ध है:—

इससे प्रकट होता है कि प्राचीन काल में पहेलियाँ बुझाने की प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। विवाह में गाँठ छुराई की परिपाटी प्रहेलिका प्रस्तुत करने की रीति का बचा हुआ रूप है। ऐसा एक मानव-तत्व विशारद का कथन है।

बातचींत का स्थल पनघट है। रसीले पंडित का मन सुन्दरी को देखकर फिसलने लगता है। वह उससे वार्तालाप करना चाहता है। अतः पूछता है।

"गोरी मेरी एक पहेली बुझाओ—

जेकर सोरि पाताजें खीले आसमान में पारे अंडा,
ई बुझौअलि बूझि के, तू गोरी उठाव हंडा।

गोरी चतुर है। वह भी अपनी बुद्धि का परिचय देती हुई पंडित के प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देती है :—

"बाप के नाँव सपूत के नाँव, नाती के नाँव किछु अवर,
ई बुझौअल बूझि के, तूँ पांडे उठाव कवर।"

पंडित युवती की विलक्षण मेघा पर मुग्ध था, लेकिन अपनी पहेली के उत्तर को समझ न सका। विचार मग्न होकर वह इधर-उधर देखने लगा। युवक एक ग्रामीण युवती द्वारा स्वयं को पराजित मानने के लिए तैयार न था।

समीप में खड़े हुए एक पथिक ने पंडित की कथा का अनुभव किया। उसने एक बार युवक पंडित और गोरी वधू की ओर देखा और बोला—

जे के खाइ के हाथी माते,
तेलीं लगावे घानी।

ए पांडे तू कवर उठाव,
गोरी ले जासु घर पानी ।

(उत्तर—महुआ)

इसी प्रकार सूर्य, रुपया, चन्द्रमा, नमक, किवाड़, केला, बन्दूक, हाथी, हुक्का, ताला, दीपक, रुई, आग, महुआ, पायजामा, शंख, पोथी, जूता, लकड़ी, पान, फूल, धूआँ, सांप, कटहर, पंखा, बिच्छू, काजल, दातुन, उस्तरा, सरसों, तारा, आँख, दांत, पेट, हींग पर बनी हुई विभिन्न लोक-भाषाओं की पहेलियाँ तुलनात्मक अध्ययन का विषय हो सकती हैं ।

प्रहेलिकाओं के विषय अनन्त हैं । ऐसी स्थिति में विषयों के आधार पर इनका वर्गीकरण असंभव-सा प्रतीत होता है, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए कुछ लोक-साहित्य के समालोचकों ने पहेलियों का विभाजन निम्नलिखित रूपों में किया है ।

(१) पशु-पक्षी संबन्धी (२) वृक्ष-फल-फूल सम्बन्धी (३) शरीरावयय- (४) सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि संबन्धी (५) खाद्य सामग्री सम्बन्धी (६) वस्त्राभूषण (७) लेखन सामग्री सम्बन्धी (८) अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी (९) व्यवसाय सम्बन्धी (१०) धातु-काष्ठ-चर्मादि निर्मित वस्तु सम्बन्धी (११) कथात्मक (१२) गृहोपयोगी पदार्थ सम्बन्धी (१३) क्षुद्रजीव जन्तु सम्बन्धी । (१४) विरोधाभासात्मक (१५) जलाशय-पर्वत सम्बन्धी (१६) अग्नि, पवन सम्बन्धी (१७) विष-जीव-जन्तु सम्बन्धी (१८) देवी-देवता सम्बन्धी आदि ।

यह स्पष्ट है कि प्रहेलिका साहित्य हमारे लोक-साहित्य का प्रमुख अंग है, जो अध्ययन एवं शोध का एक पृथक विषय हो सकता है ।

लोक-कवि घाघ की सूक्तियाँ

भारतवर्ष के प्रसिद्ध जन-कवि घाघ विशेष बहुश्रुत और बहुज्ञ थे। उन्होंने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे [1] और सम एवं विषम परिस्थितियों में अपने आपको विवेक के साथ सँभाला। दुनिया के असली रूप को उन्होंने अपनी आँखों देखा और हिए की आँखों से उस पर सोचा तथा विचारा। कहा जाता है कि वे सम्राट अकबर के दरबार में भी कुछ समय तक रहे और राजकीय कृपा से अपने जीवन को सुखमय बनाया। कुछ विशेष कारणों से घाघ को अपनी जन्मभूमि का परित्याग करना पड़ा था। अपनी आजीविका के लिए वे इधर उधर फिरे। कुछ लोगों ने उन्हें अपनाया तो कुछ स्वार्थियों ने उनके साथ अशोभनीय व्यवहार भी किया। सज्जनों और दुर्जनों के संपर्क में आने से घाघ को मनुष्यों की पहिचान करने का पूर्ण अवसर मिला। बहुत समय तक घाघ ने कृषि को अपनी अजीविका का साधन बनाया था। इस प्रकार विद्वान् घाघ ने जो कुछ भी कहा है उसमें उनकी निजी अनुभवशीलता का पूर्ण योग है। यही कारण है कि उनकी सूक्तियाँ अक्षरशः सत्य हैं। आज भी सत्य हैं और आने वाले भविष्य में भी उनको सचाई असंदिग्ध रहेगी।

घाघ की कहावतों का भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश में प्रचार है। स्थान-विशेष के प्रभाव से इनमें भाषा का परिवर्तन अवश्य हो गया है, लेकिन तथ्य में पूर्ण समीचीनता विद्यमान है। जितनी सच्ची घाघ की कृषि- विषयक कहावतें हैं उतनी ही सत्य उनके राजनीति सम्बन्धी विचार हैं। बघेलखण्डी, बुन्देलखंडी अवधी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी, गुजराती, मराठी, मालवी, भोजपुरी, पंजाबी, राजस्थानी आदि लोक-साहित्य में घाघ की कहावतों का विशेष महत्व है। आदिवासी साहित्य में भी घाघ की सूक्तियों को स्थान मिला है।

---

१ एक तो बसो सड़क पर गाँव, दूजे बड़े बड़ेन में नाँव।
तीजे परे दरब से हीन—घघ्घा हमको विपदा तीन॥

घाघ की कहावतों का अत्यधिक प्रचार देखते हुए कुछ विद्वानों ने कहा है कि गोस्वामी तुलसीदास की चौपाइयों के ही समान घाघ की सूक्तियाँ भारतीय ग्राम-निवासियों के कंठों में विराजमान हैं।

लोक-कवि घाघ सन् १६९६ में उत्पन्न हुए थे और कन्नौज की सुरभित भूमि को इन्होंने अपनाया था। अतः ये कन्नौज के निवासी कहे जाते हैं।[१]

श्री मिश्रबन्धु के मतानुसार ये १७५३ में उत्पन्न हुए और १७८० में इन्होंने कविता की। मोटिया नीति आपने जोरदार ग्रामीण भाषा में कही है।[२]

कुछ विद्वानों का कथन है कि घाघ छपरे के रहने वाले थे।[३]

कहा जाता है कि आप की मृत्यु तालाब में डूबने से हुई थी लेकिन स्वर्गवास-तिथि का निश्चय अभी तक नहीं हो सका।

यहाँ घाघ की कुछ कहावतों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनसे इस सुधी लोक-कवि की बहुज्ञता का सुगमता से परिचय प्राप्त हो सकता है। धरती पर कोई ऐसा विषय नहीं बचा है जिस पर घाघ ने अपने विचार प्रकट न किये हों।

(१)

"ओछो[४] मंत्री राजै नासै, ताल विनासै काई।
सान[५] साहिबी फूट बिनासै, 'घग्घा पैर बिवाई।

(२)

ओछे[६] बैठक ओछे काम ओछी बातें आठों याम।
घाघ बताए तीन निकाम[७] भूलि न लीजो इनको नाम।

(३)

ऊँच अटारी मधुर बतास[८]।
घाघ कहैं घर ही कैलास॥

---

१ देखिए भारतीय चरिताम्बुधि, २ मिश्रबन्धु विनोद, ३ घाघ और भड्डरी—सम्पादक श्री रामनरेश त्रिपाठी, ४ नीच प्रकृति वाला, ५ बड़प्पन, ६ ओछे आदमी, ७ बुरे, ८ हवा।

(४)

काँटा बुरा करील का, 'घाघ' बदरिया घाम।
सौत बुरी है चून की, औ साझे का काम।

(५)

खेती करै बनिज को धावै।
धन्धा डूबै थाह न पावै।

(६)

खेती पाती[1] बीनती[2], औ घोड़े की तङ्ग।
अपने हाथ सँवारिए, 'घाघ' मिले आनन्द।

(७)

घर घोड़ा पैदल चलै तीर चलावै बीन[3]।
थाती[4] धरै दमाद घर, घघ्घा भकुआ[5] तीन।

(८)

घर में नारी आंगन सोवै, रन में चढ़के छत्री[6] रोवै।
रात को सतुआ करै बिआरी, घाघ मरै तेहिर[7] महतारी।

(९)

'घाघ' बात यह निज मन गुनहीं।
ठाकुर भगत न मूसर धनुही।।[8]

(१०)

चाकर[9] चोर राज बेपीर[10], कहै घाघ का राखै धीर[11]।

(११)

चोर जुआरी गँठकटा[12], जार[13] औ नार[14] छिनार[15]।
सौ सौगन्धें खायँ जौ, घाघ न करु इतवार[16]।

---

१ चिट्ठी लिखना, २ प्रार्थना करना, ३ बीन बीनकर, ४ धरोहर, ५ मूर्ख, ६ क्षत्री ७ उसकी, ८ धनुष, ९ नौकर, ११ निर्दयी, ११ धर्म, १२ गिरहकट, १३ व्यभिचारी, १४ स्त्री, १५ व्यभिचारिणी, १६ विश्वास।

(१२)

जेहि की छाती होय न बार।
घाघ' ओहि सें रह हुशियार।

(१३)

जाको मारा चाहिए, बिन मारे बिन घाव।
वाको 'घाघ' बताइए, घुँइया पूरी खाव।

(१४)

ढीठ[१] पतोहू[२] धिया[३] गरियार[४], खसम[५] बेपीर न करै विचार।
घरे जलान[६] अन्न न होई, 'घाघ' कहैं सो अभागी जोई।

(१५)

नसकट[७] पनहीं[८] बतकट[९] जोय[१०],
जो पहिलौटी बिटिया होय।
पातरि[११] कृषी बौरहा[१२] भाय[१३],
घाघ कहैं दुख कहाँ समाय।

(१६)

नसकट खटिया दुलकन[१४] घोर[१५]।
घाघ कहैं यह विपति कै ओर।

(१७)

आमा नीबू बानियाँ, गर चाँपे रस देय।
कायथ कौआ करहटा[१६], 'घाघ' मृतक से लेयँ।

---

१ निडर, २ पुत्रवधू, ३ पुत्री, ४ आलसी, ५-पति, ६ लकड़ी, ७ नस काटने -वाला, ८ जूता, ९ बात काटने वाली, १० स्त्री, ११ कमजोर, १२ बेवकूफ, १३ भाई, १४ दुलकी चलाने वाला, १५ घोड़ा, १६ गीध,

(१८)

नीचन से ब्योहार[1] बिसाहै[2], हँसिके माँगे दम्मा।[3]
आलस[4] नींद निगोड़ी[5] घेरे, घग्घा तीन निकम्मा॥

(१९)

नारि करकसा कटहा घोर, हाकिम होइके खाइ अँकोर[6]।
कपटी मित्र पुत्र है चोर, घग्घा इनको गहिरे[7] बोर।

(२०)

प्रातकाल खटिया ते उठि के, पियै तुरन्ते पानी।
ता घर बैद कभी ना आवै, बात घाघ कै जानी।

(२१)

निहपछ[8] राजा मन हो हाथ, साधु परोसी नीमन[9] साथ[10]।
हुकुमी पुत्र धिया सतवार[11], तिरिया भाई रखै विचार।
कहैं घाघ हम करत विचार, बड़े भाग से दे करतार॥

(२२)

भुइयाँ खेड़े हर हों चार, घर हो गिहथिन[12] गऊ दुधार।
रहर की दाल जड़हन कै भात, गागल[13] निबुआ औ घिउतात।
दही खाँड़ जो घर में होय, बाँके नैन परोसै जोय।
कहै 'घाघ' तब सब ही झूठा, उहाँ छाँड़ि इहवैं बैकुण्ठा।

(२३)

सावन घोड़ी भादों गाय, माघ मास जो भैंस बिआय।
कहैं 'घाघ' यह साँची बात, आप मरे या मलिकै[14] खाय।

---

१ व्यवहार, २ करना, ३ पैसा (अपना पैसा), ४ आलस्य, ५ बुरी, ६ घूस, ७ गहरे पानी में डुबो दे। ८ निष्पक्ष, ९ अच्छा, १० संगति, ११ सत्याचरण वाली, १२ चतुर स्त्री, १३ रसदार, १४ मालिक को।

(२४)

सुथना[१] पहिरे हर जोतैं औ, पौला[२] पहिरि निरावैं[३] ।
घाघ कहैं ये तीनों भकुआ, सिर बोझा ले गावैं ।

(२५)

सघुवै[४] दासी, चोखैं खाँसी, प्रेम विनासैं हाँसी[५] ।
घग्घा उनकी बुद्धि बिनासैं, खाय जो रोटी बासी ।

(२६)

यकसर[६] खेती यकसर मार ।
घाघ कहैं ये सद हूँ हार ॥

(२७)

माघे गरमी जेंठे जाड़ ।
कहैं घाघ हम होव उजाड़ ॥

(२८)

घाघ जु मंगल[७] होय दिवारी ।
हँसैं किसान रोवैं वैपारी ।

(२९)

बाँध कुदारी खुरपी हाथ,
लाठी हँसुवा राखै साथ ।
काटैं घास औ खेत निरावैं,
'घाघ' किसान वही कहलावैं ।

(३०)

अधकचरी[८] विद्या दहे, राजा दहे अचेत[९] ।
ओछे कुल तिरिया दहे, 'घाघ' कलर[१०] का खेत ।

---

१ पाजामा, २ खड़ाऊँ, ३ निरवाही करना, ४ साधुको, ५ हँसी, ६ अकेले, ७ मङ्गलवार । ८ अधूरी, ९ असावधान, १० कपास ।

(३१)

उलटा बादर जो चढ़े, विधवा खड़ी नहाय।
घाघ कहै सुन भड्डरी, वह बरसे वह जाय।

(३२)

खेती तो थोरी करे, मिहनत करे सिवाय।
घाघ कहै वहि मनुष को, टोटा कबौं न आय।

(३३)

खेती करै साँझ घर सोवै।
काटै चोर, 'घाघ' नित रोवै।

(३४)

नीचे ओद[१] ऊपर बदरई
घाघ कहैं गेरुई[२] अब आई।

(३५)

पछिवाँ हवावैं[३] ओसावैं[४] जोई।
घाघ कहै घुन कबहुँ न होई।

(३६)

जेकरे खेत पड़ा नहिं गोबर।
घाघ कहैं वह कर्षक[५] दूबर।

(३७)

खेते पाँसा जो न किसान।
घाघ कहै वह दीन महान।

(३८)

नीला कंधा बैंगुन खुरा।
कभी न निकले घग्घा बुरा।

---

१ गीला, २ गेरुई नामक रोग, ३ हवा में, ४ अनाज की ओसौनी करना, ५ किसान।

(३९)

छोट सींग औ छोटी पूँछ।
घाघ कहैं लीजे बे पूँछ।

(४०)

छोटा मुँह औ ऐंठा कान।
घाघ बैल की है पहचान।

(४१)

सावन सुकला सतमी, गगन स्वच्छ जो होय।
कहैं घाघ सुन भड्डरी पुहुमी[1] खेती होय।

(४२)

साँझै धनुष विहानैं[2] पानी।
कहै घाघ सुन पंडित ज्ञानी।

(४३)

लगा अगस्त फुले बनकासा।
घाघ थोड़ बरखा की आशा।

(४४)

रात निवछर[3] दिन को छया[4]।
कहैं घाघ अब बरखा गया।

(४५)

रोहिन बरसे मृग तपे, कुछ कुछ अद्रा जाय।
कहै घाघ सुन भड्डरी स्वान भात नहि खाय।

(४६)

वायू में वायु समाय।
घाघ कहैं जल कहाँ समाय।

---

१ कमजोर, २ सबेरे, ३ बादल रहित (आकाश), ४ बादलों की छाया।

(४७)

दिन में गरमी रात में ओस।
कहैं घाघ बरखा सौ कोस।

(४८)

उत्तर चमकैं बीजुरी, पूरब बहतो बाड़।
घाघ कहै सुन भड्डरी बरधा[1] भीतर लाड़।

(४६)

आदि न बरसे आदरा[2] हस्त[3] न बरस निदान।
कहैं 'घाघ' सुन भड्डरी, भए किसान पिसान[4]।

(५०)

बाड़ी में बाड़ी करै, करै ईख में ईख।
घाघ मिटेंगे मूढ़ ये सुनै पराई सीख।

(५१)

मक्का जोन्हरी और बाजरी।
घग्घा बोवे कछुक बीडरी[5]।

---

१ बैल, २ आर्द्रा नक्षत्र, ३ हस्त नक्षत्र, ४ किसान दुखो में डूब जाता है, ५ अलग अलग।

भारतीय लोक जीवन में बापू

सन्त महात्मा हो तुम जग के, बापू हो हम दीनों के।
दलितों के अभीष्ट वरदाता, आश्रय हो गतिहीनों के।
आर्य अजातशत्रुता की उस परम्परा के स्वतः प्रमाण।
सदय बन्धु तुम विरोधियों के निर्दय सुजन अधीनों के।

(राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त)

मानवता के प्रथम चरण हे ।
देव, तुम्हारे संयम द्वारा,
पैशाचिक बल है सब हारा।
थे निश्चय ही अखिल जगत् की तुम अति पावन सुखद शरण हे।
मानवता के प्रथम चरण हे।

(श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन')

इस सत्य अहिंसा शांति-मार्ग पर विश्व चलेगा युग-युग तक।
हे अनासक्त, जग, तव पद्वी अनुरक्ति पलेगा युग युग तक।
तुम तेज अलौकिक बन जगती के जन जन में प्रतिभासित हो।
तुम दिग दिगन्त में वन्दित हो।

(श्री सुमित्राकुमारी सिन्हा)

पूज्य बापू इस धरती पर एक अवतार बनकर आए थे। सत्य और अहिंसा के द्वारा उन्होंने संसार के आगे एक ऐसा कार्य किया जिसे आज तक कोई न कर सका। चरखा कातकर उन्होंने स्वावलंबन का पाठ सिखाया। अपने प्रबल शत्रुओं को बापू ने प्रेम और स्नेह से जीता। दीन-हीनों को उन्होंने बल दिया और अछूतों को हरिजन सिद्ध करके संसार से साम्प्रदायिकता को हमेशा के लिए मिटाया। सूर्य के समान वे चमके और चन्द्रमा की भाँति सबको शान्तिदायक सिद्ध हुए। उनका जीवन परोपकार के लिए था और उनकी प्रत्येक साँस जन-जन

के लिए उठी और गिरी। वे संसार की भूख मिटाने के लिए स्वयं भूखे रहे और गे जगत् को कपड़ा देने के ही वास्ते उन्होंने लंगोटी पहनी। वे संसार को हँसता हुआ देखकर हँसे और उसे रोता हुआ देख कर फूट-फूट कर रोए। विश्व उनसे प्रभावित हुआ और लोक-जीवन में वे भगवान बने। वे सच्चे सन्त थे और मन-वचन-कर्म में समान थे। उनकी नीति गाकर संसार का साहित्य पुनीत हो रहा है। वन, पहाड़, नदियाँ, सरोवर और पनघट इस देवता की वन्दना से आज भी शब्दायमान हो रहे है। पिंजड़े में बंद तोता 'बापू की जय' बोलता है। जंगलों में निवास करने वाले हमारे आदिवासी भाई बापू की दयालुता और त्याग के गुण गाते हैं। हमारे लोक-साहित्य के सुरीले राग राष्ट्र-पिता बापू की जीवन-गाथा से भर गए हैं। महात्माजी की प्रिय वस्तुएँ तकली, खादी और चरखा हैं। किसी को विश्वास न था कि चरखे के चक्कर से लंदन हिल जायेगा। किसी को यकीन नहीं होता था कि चरखे के आगे मशीन गनें झुक जावेंगी। कोई भी यह मानने को तैयार न था कि रक्त के प्यासे कूटनीतिज्ञ अंग्रेज महात्मा गांधी के असहयोग से अपनी विशाल राजसत्ता को भारत से हटालेंगे। किन्तु बापू के कर्मठ पैरों ने और वरद हस्तों ने असंभव को संभव बना ही दिया। गांधी बाबा का मोहनरूप सबको प्रिय लगता है। कई कवियों ने उनकी तुलना विश्व-मोहन भगवान कृष्ण से की है :—

जग-मोहन मोहन बने, तुम गिरधर गोपाल।
भारत मां के लाल तुम, हो सच्चे गोपाल।

सुन लीजिए कुछ माताएँ ढोलक पर गाती हैं :—

गांधीजी महाराज महात्मा, मेरा मनरा मोह लिया।
मोह लिया, भरमाय लिया, खादी पहना सजवाय लिया।
तकली, चरखा चलवा, चलवा खादी साज सजाय दिया।
खादी टोपी धोती-कुरता खादी धारी बनाय दिया।

ब्रिटिश सरकार को दुलहिन बनाकर और गांधी बब्बा के सिर पर मौर बांध कर हमारे गांव के निवासियों ने विवाह की तमन्ना पूरी की है। पुलिस को कहार के रूप में और थानेदार को नउवा के रूप में चित्रित करके लोक-कवि ने

इनके प्रति अपनी हार्दिक घृणा का परिचय भी खूब दिया है। कल्पना मौलिक है और सरस भी। बरात का पूरा दृश्य सामने आ जाता है :—

'मेरे चरखे का टूटे न तार
चरखा चालू रहे।
महात्मा गांधी दूल्हा बने हैं,
दुलहिन बनी सरकार।
चरखा चालू रहे।
सारे कांग्रेसवा बने हैं बराती,
पुलिस बनी है कहार।
चरखा चालू रहे।
नेहरू जवाहर बने नेंगारे,
नउआ बनो थानेदार। चरखा चालू रहे।

कलियुग में महात्मा गांधी को भगवान का अवतार मानकर उनके सत्याग्रह की महिमा लोक-गीतों में विशेष रूप से गाई गई है। परमात्मा और प्रकृति के समान ही बापू के साथ माता कस्तूर बा का सम्बन्ध अविनश्वर है। विवाह-मंडप के नीचे गाती हुई सुहागिनों के मधुर कंठ से निकला हुआ यह गीत मैंने कई बार सुना और बापू की महत्ता पर श्रद्धावनत हो गया।

गांधी एक महात्मा उपजे, कलयुग में अवतारी रे।
जिनकी तिरिया पतिव्रता भई, कस्तूरी बा जानी रे।
चरखा संग रमाई धूनी, दोइ मानस उपकारी रे।
सांची बात धरम की जानी, और अहिंसा ठानी रे।
मरद लुगाई लड़ी लड़ाई, सत्याग्रह सो जानी रे।
अँगरेजन सों जबर जोर भओ, हार उनई ने मानी रे।
गांधी एक महात्मा उपजे, कलयुग में अवतारी रे।

पूज्य बापू की वाणी का प्रभाव मंत्र के समान था। उनके व्याख्यानों को सुनकर ही संसार ने कांग्रेस को समझा।

गांधी के लेकचरवा,
दुनिया पहले कि उन्हें सुनके ना।
हरि मोरे भइले कंगरेसिया,
कि उन्हे सुनके ना।

दुनिया में गांधी के भाषणों की घूम मची है। उनको सुनकर मेरे पति काँग्रेसी बन गए हैं। अर्द्ध नग्न एक संथाली युवक की आँखों ने पूज्य बापू के दर्शन किए और वह उनका भक्त बन गया। बापू के वेशभूषा का उल्लेख करता हुआ संथाली नौजवान त्राता के रूप में गांधी बाबा का स्वागत कर रहा है।

चेतान दिसम् खुन गांधी बाबाये दराए कान्।
तीरे तापे नायोगो कानुन पुथी,
बहक् रेताए खद्दर टोपरी।
तारिन रेताए नाया गो मोटा गामछा
माहो दिसम् रेन मानेवाँ वंचाव।
तवोन लगितए है अकाना।

हे माँ, पश्चिम दिशा से गांधी बाबा आये हैं।
उनके हाथ में कानून की पोथी है।
उनके माथे पर खद्दर की टोपी है।
उनके कन्धे पर मोटा गम्छा है।

हे बन्धुगण सुनो, वे हम लोगों को बचाने के लिए आए हैं।[१]

देश-हित जेल-यात्रा करने वाले बापू के लिए एक पंजाबी भाई ने एक बार भरे हुए कंठ से गुन गुनाया था।

आप गांधी कैद हो गया।
सानूं[२] दे गया खद्दर दा[३] बाणा[४]।
गांधी दा[५] नां[६] सुण के,
अंग्रेज दी[७] नानी मरगई।

---

१ जयगांधी—लेखक, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी (आजकल—बापू अंक), २ हमें, ३ का, ४ बाबा, ५ का, ६ नाम, ७ की।

हमारे बापू स्वयं धर्म थे। वे भगवान् के रूप थे। धर्माचार्यों ने उन्हें धर्म की परमोत्तम प्रतिभा मान लिया था।

'तुझ पै कुर्बान खुदाई है वह इंसान है तू।
अहले[1] ईमान य कहते हैं कि ईमान[2] है तू।

महात्मा गांधी भारतवासियों के हृदयों में समा गए हैं। उनकी वाणी आज प्रत्येक भारतीय के मन में गूँज रही है। भारतीय ललनाओं ने उन्हें अपना ईश्वर माना और उनकी वन्दना में अपना हित समझ निम्नस्थ लोक-गीत में एक युवती अपनी चुनरिया पर गांधी बाबा के चित्र को चित्रित करने के लिए रंगरेज से कह रही है :—

"खादी की चुनरिया रंग दे छापेदार रे रंगरेजवा।
बहुत दिनन से लागल वा मन हमार रे रंगरेजवा।
कहीं पै छापो गाँधी महातमा चरखा मस्त चलाते हों।
कहीं पै छापो वीर जवाहर जेल के भीतर जाते हों।
अंचरा पै झंडा तिरंगा बांका, लहरदार रे रंगरेजवा।

गढ़वाल प्रदेश की पृथ्वी बापू के गान से पवित्र हुई और वहां के किसानों ने जो गांधीजी का रूप अपने गीतों में अंकित किया है वह बहुत ही सुन्दर और स्पृहणीय है:—

मातमा गाँधी बड़ो भागी छ
देश मुलक को अनुरागी छ
बकरी को दूद वो खांदू छ
खादी को लाण वो लांदू छ
पंद्र अगस्त हम दिलैंगी बो,
अंगरेजू सणी भगैंगी बो,
राज किसाणू दिलैंगी बो,
मातमा गाँधी बड् त्यागी छ
देश मुलक को अनुरागी छ

---

१ धर्मात्मा लोग, २ धर्म।

महात्मा गांधी बड़े भाग्यशाली हैं
देश के अनुरागी हैं।
वे बकरी का दूध पीते हैं।
खादी के वस्त्र पहनते हैं।
वे हमें पन्द्रह अगस्त दे गए।
वे अंग्रेजों को भगा गए।
वे हमें आजादी दिला गए।
वे राज किसानों को दे गए।
महात्मा गांधी बड़े त्यागी हैं।
देश के अनुरागी हैं।[1]

बुन्देलखंड का अत्यधिक लोक-प्रिय राई नृत्य बड़ा ही सरस होता है। इसमें गाए जाने वाले गीत केवल दो पंक्तियों के होते हैं लेकिन स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ गायक और गायिकाएँ इन पंक्तियों को बहुत समय तक गाती रहती हैं। निम्नस्थ राई-गीतों में बापू के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला गया है :—

(१)

ऐसो जोगी न देखो यार,
जैसो भओ कलयुग में गांधी।

(२)

गांधी को मानों औतार।
जे हैं सत्य अहिंसा के पुजारी।

(३)

गांधी के होगए नाम,
जैसे भए रामकृष्ण के।

(४)

गांधी की नोंनी चाल।
जीने अपनाए सब मनुष खाँ।

---

१ गढ़वाली लोक-गीत—ले० गोविन्द चातक पृष्ठ २६१

(५)

वे तो सब के अधार,
नैया खिवैया जहान के।

(६)

बापू सों करलो प्रीत,
वे हैं जनम-करम के साथी।

पूज्य बापू का व्यक्तित्व महान था। वे आकाश के समान विशाल, सागर के समान गम्भीर और हिमालय की भाँति दृढ़ थे। भारतीयता की वे थाती थे और भारत-भाग्य-भानु। उनके जीवनकाल में लिखी गई निम्नस्थ कविता उनकी महानता पर प्रकाश डालती है:—

हिन्द में दहाड़ता दिखाई पड़ता है कभी,
कभी गिरा तेरी सिन्धु पार में सुनाती है।
जीवन का, जन्म का, तू लाभ है उठाया एक,
धाक जिसकी कि आज भूतल कंपाती है।
गात में लंगोटी एक बोटी भर मांस लिये,
पैंतिस करोड़ भारतीयता की थाती है।
भारत के भाग्य-भानु कर्मवीर गांधी तेरे,
तीन हाथ गात पै हजार हाथ छाती हैं।

(श्री अम्बिकेश)

सांसारिक माया के बन्धनों को तोड़ने वाले और सत्याग्रह सुमन्त्र के स्रष्टा बापू सदैव वन्दनीय हैं:—

'सत्याग्रह सुमन्त्रस्य स्रष्टारं सत्य सुन्दरम्।
महनीयतमं वन्दे 'मोहनं' मोह नाशकम्॥'

—श्री सूर्यनारायण व्यास

बापू का जीवन सादगी का स्वच्छतम रूप था। राष्ट्र-ज्योति के वे देदीप्यमान रत्न थे। उनके इस साधारण वेश ने एक असाधारण प्रभाव डाला।

विदेशी वस्त्रों की मोहकता पर विमुग्ध होने वाली नारियों ने भी खादी को अपनाकर अपने पूज्य बब्बा गान्धीजी के प्रति श्रद्धा प्रकट की। विवाहिता जीवन में पदार्पण करने वाली लड़की (बन्नी) को वृद्धाएं उपदेश देती हुई कहती हैं :—

'बचन गान्धी के निभाओं बारी बनरी,
के बारी बनरी चीजें स्वदेसी पहनों।
के बारी बनरी ऐ रंग स्वदेशी पहनो,
विदेशी को वापिस कराओ बारी बनरी।

ऊँच-नीच का कल्पित भेद मानवता के लिए विष है। पूज्य बापू ने इस भेद-भाव को मिटाकर संसार में मनुष्यता की महिमा को बताया। वर्ण-भेद और वर्ग-भेद के विनाशार्थ महात्माजी ने एक बार अनशन किया और पृथ्वी विकल हो उठी। हिमांचल प्रदेश के एक लोक-गीत में इसी भाव को प्रकट किया गया है :—

'तुमी हौला गान्धी आ देवते रा भेषौ,
बौरितौ हुओ छांड़िओ एकिशुओ देसौ।
काम्बदी लागी धरती हुओ लो पायो,
मौरा न चेंई भाइओ दुनिया रा बापौ।

हे महात्मा तुम सचमुच देवता हो, जिसने २१ दिन तक व्रत धारण किया। बापू के व्रत से खलबली मच गई जैसे भूचाल आगया हो। लोग सोचने लगे कि ऐसा न हो संसार-पिता गान्धी हम से जुदा हो जायें।

पूज्य गान्धी की गरिमा सागर की लहरों के समान आदि-अन्त रहित है। वे एक दिव्य ज्योति थे, जिसके प्रकाश में यह अनन्त विश्व अपने जीवन की शुद्ध आलोचना करता रहेगा। महामहिम गान्धी के निधन पर आकाश रोया था पृथ्वी चिल्लाई थी, मानवता ने सिसकियां भरी थीं, दीन-दुखी अनाथ हो गए थे और देश का बच्चा-बच्चा किलबिला उठा था। इस समय कवियों के हृदय ने जो मर्म-भेदी चीत्कार की थी उससे आज भी विश्व विकल है :—

'अरे राम ! कैसे हम झेलें, अपनी लज्जा उनका शोक,
गया हमारे ही पापों से, अपना राष्ट्रपिता परलोक।
(पूज्य मैथिलीशरण गुप्त)

उस धवल कमल को तुमने समझा तक्षक था।
पालक था जिसको तुमने समझा भक्षक था।
वह दुश्मन नम्बर एक तुम्हारा रक्षक था।
धीरे-धीरे तुमको होगा यह भासमान (श्री बच्चन)

भारत के रतनवा बापू कहाँ गइल हो,
मोरे देशवा के ललनवां बापू कहां गइल हो।
देश रोवे हो विदेश रोवे हो,
मोरे भारत के परनवा बापू, कहां गइल हो।

को लै है खबरिया मोर,
धरती खां छोड़ गए बापू। (राई गीत)

हमतौ हो गए अनाथ,
जब सें सुध बिसारी बापू नें। (राई गीत)

पूज्य बापू का एहसान कोई नहीं भूल सकता। जो जनता के लिए जिया और मरा, वह महादेवता बापू सदा अमर रहेगा :—

'ऊँचो त् ए नीचो वादे भुलिग्रो न सानों,
तुग्रौं री तैंई गान्धी ए देड़ी ती जानौं।
राती लागा दे सौ तैंव कौरिदा कामौ,
साथी शिखाउवा दुनिये दो भौजिगा रामो।

भारत का कोई भी व्यक्ति महात्मा का एहसान नहीं भूल सकता, जिसने जनता के लिए अपनी जान दे दी। रात-दिन वह महात्मा देश के लिए काम करता और साथ ही दुनिया को राम का नाम भजना सिखाता।[1]

---

१ हिमांचल प्रदेश के लोकगीत—ले० पद्मिनी हरदयाल, हिमप्रस्थ-स्वतन्त्रता अङ्क।

बापू अमर हैं। वे भारतीय जनता की सांसों में सदैव जीवित रहेंगे। महाकवि बच्चन के शब्दों में—'बापू का मरना सौ जीने से जोरदार' है :—

मरना जीवन की एक बड़ी लाचारी है।
उसके आगे खिल्कत ने मानी हारी है।
बापू का मरना जीने की तैयारी है,
बापू का मरना
सौ जीने से—
जोरदार !

अहिंसा और सत्य की साधना के प्राण बापू अविनश्वर हैं। जब तक गङ्गा की धार भूतल पर प्रवाहित है तब तक बापू और बापू की वाणी जीवित है। निश्चयतः गान्धीवाद ने मानवता को नव प्राण और नव मान दिया है—

गान्धीवाद जगत में आया, ले मानवता का नव मान।
सत्य अहिंसा से मनुजोचित, नव संस्कृति नव प्राण।
मनुष्यत्व का तत्व सिखाता, निश्चय हमको गांधीवाद।
सामूहिक जीवन-विकास की 'साम्य' योजना है अतिवाद।

(युगवाणी—पन्त)

यह अटल सत्य हैं कि बापू के चरणों की भक्ति करके ही संसार मुक्ति को प्राप्त होगा :—

'राष्ट्र ही अपना नहीं यह,
किन्तु मानव जाति सारी।
मुक्ति पायेगी वरे यदि,
भक्ति चरणों की तुम्हारी।

(श्री नारायण चतुर्वेदी)

संयम-क्षमा के पूज्य देवता बापू तुम्हारी जय हो।

जय बोलो गान्धी बाबा की।
जय बोलो सन्त विनोवा की।
जय बोलो दीन रखैया की।
जय बोलो भारत मैया की।

लोक-स्वरों में गुञ्जित—

श्री का प्रतीक कमल

कमल पवित्रता और सौन्दर्य का प्रतीक है। पुनीत एवं मनोहर शरीर के अवयव की तुलना कमल से की जाती है। समृद्धि और श्री का अविनश्वर चिह्न कमल ही है। कमल की मनोज्ञता का उल्लेख संसार के संपूर्ण साहित्य में हुआ है। प्रत्येक सम्प्रदाय के आराध्य का शुभासन कमल है। अमरत्व का आशीर्वाद कमल को देकर दिया जाता है। देवता की आराधना में देवत्व का संकल्प कमल के समर्पण से होता है। हमारे अनेक देवी-देवताओं का जन्म इसी पुनीत कमल से माना जाता है। प्रत्येक हिन्दू जानता है कि भगवान ब्रह्मा का जन्म भगवान विष्णु की नाभि से प्रकट हुए कमल से हुआ है। महादेवी लक्ष्मी का जन्मस्थान कमल-कोष है। पौराणिक कथा के आधार पर यह कहा जाता है कि कमल के पत्ते को पानी में खड़ा हुआ देखकर ही संसार की आधार रूपा पृथ्वी का अन्वेषण हुआ था और स्वयं भगवान ने वराह अवतार धारण करके जलमग्न पृथ्वी का उद्धार किया था। प्रजापति को जन्म देकर कमल संसार की सृष्टि का आदि कारण बन गया है। लक्ष्मी का जनक होने से ही कमल ऋद्धि-सिद्धि की उपलब्धि का हेतु कहा गया है। प्राचीन समय से कमल की ओर भगवान, ऋषि-मुनि, मानव, पशु-पक्षी तथा दानव आदि आकर्षित हैं। कलाकारों तथा साहित्यकारों ने कमल की कोमलता, सौन्दर्य, सरसता, विविध रंगों से रंगीन मनोज्ञता, आकर्षण-केन्द्र आकृति, पुनीत प्रवृत्ति, अमरता, देवत्व, परोपकार-निरतता, सहजता, श्यामता, स्नेहत्व आदि का अपनी भावुक तूलिका तथा सहृदय लेखनी से अनेक रूपों में वर्णन किया है। अखिल ब्रह्माण्ड को भी कमलवत् माना गया है। वेदों, उपनिषदों एवं पुराणादि में वर्णित कमल का रूप बड़ा ही सुन्दर है।

तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि प्रारंभ में केवल अथाह जलराशि

थी । उस जलराशि से कमल का एक पत्ता बाहर निकला और कमल के उस पत्ते से प्रजापति का जन्म हुआ । बाद में प्रजापति ने संसार की रचना की । महाभारत के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का जन्म विष्णु की नाभि से निकले कमल से हुआ । इसीलिए ब्रह्मा को पद्मज, अब्जज या अब्जयोनि और विष्णु को पद्मनाभ कहते हैं । महाभारत में यह भी कहा गया है कि कमल विष्णु के मस्तक से निकला और उससे श्री या लक्ष्मी का जन्म हुआ । इसीलिए लक्ष्मी को पद्मा या कमला भी कहते हैं । महाभारत के अनुसार नलिनी झील (मान सरोवर—कैलास पर्वत के निकट) और मन्दाकिनी नदी में स्वर्ण कमल खिले रहते हैं । नलिनी भी सरोज और सरोजिनी की भांति कमल ही का एक नाम है ।"[१]

भक्तों ने अपने भगवान के चरणों में कमलों को अर्पित करके अपनी पूर्ण भक्ति का परिचय दिया और रसिकों ने अपनी प्रेयसी के शरीर को पद्म-पराग से सुरभित करके अपनी रागात्मक अनुभूति को सप्राण बनाया है । परमात्मा एवं गुरु के मुख, नेत्र, कर एवं चरणों की तुलना में कमल को ही सेवकों ने अपनाया है । गोस्वामी तुलसीदासजी का रामचरितमानस अनेक कमलों की सुगंधि से परिपूर्ण है :—

"नील सरोरुह नील मनि, नील नीलधर स्याम ।" बाल कांड १२६

नयन कमल कल कुंडल काना वदनु सकल सौन्दर्ज निधाना ।
बाल कांड २७७

अरुण नयन राजीव सुवेशं सीता नयन चकोर निशेशं ।
अरण्य कांड ५८०

पाथोद गात सरोज मुख, राजीव आयत लोचनं ।
अरण्य कांड ६०८

---

१ 'भारतीय साहित्य में कमल,'—लेखक—न्यायमूर्ति एस० एस० पी० अय्यर (पत्र सूचना कार्यालय,भारत सरकार) यह निबन्ध गम्भीर, गवेषणापूर्ण तथा ऐतिहासिक होने के कारण साहित्यिक मनीषियों के लिए अध्ययनीय एवं संग्रहणीय है ।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।

बाल कांड ३

हिन्दी-साहित्य का रीतिकालीन काव्य प्रेयसी के गोरे गात की प्रशस्तियों से भरपूर है। सौन्दर्य प्रेमियों ने कमल के माध्यम से अपनी प्रेमिका के दीप-शिखा के समान आभायुक्त शरीर क अंग-मनोहरता का खुल कर वर्णन किया है :—

'अमल कमल बीच किरणि तरणि की सों,
छलकैं ;छलानि छवि छाय रवि सोम लैं।'

—देव।

मंद हँसी अरविन्द ज्यों बिन्द ऊँचै गये दीठि में दीठि खुभै कै।
कंज की मंजिम मंजन मानों, उड़े चुनि चंचुनि चंचु चुभै कै।

देव।

"ऐसो अवलोकिवेई लायक मुखारबिन्द,
जाहि लखि चन्द-अरविन्द होत फीके हैं।

(पद्माकर कवि)

अरुन सरोरुह-कर-चरन, दृग खंजन मुख चंद।
समै आइ सुंदरि सरद, काहि न करति अनंद।

'बिहारी'

कंज-नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार।

'बिहारी'

अंबुज नयन कंबु ग्रीबा गोल गोरी की।

'केशवदास'

हमारा भारत सरोवरों का देश है। सर्वत्र सुन्दर जालाशयों की चंचल लहरों से प्रकृति हरी-भरी रहती है। सर का जल, पंकज के अभाव में कान्ति-हीन रहता है जल और नीरज का सम्बन्ध बहुत पुराना है। ये पारस्परिक सौन्दर्य के पूरक हैं। वह जल ही नहीं जिसमें सुंदर कमल न हों, वह कमल ही

नहीं जिस पर भ्रमर न मँडराते हों।

भारतीयों का उद्यान एवं सरोवर प्रेम प्रसिद्ध है।[1]

श्लेपालंकार के द्वारा जनकपुरी का वर्णन करते हुए आचार्य केशवदास ने कहा है :—

'तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसक हीन।
जलजहार शोभित न जहँ, प्रकट पयोधर पीन।

'रामचन्द्रिका'

(जनकपुरी में पद-पद पर हंसों और कमलों से सुशोभित बड़े-बड़े तालाब थे)

हमारे लोक-गीत कमल के पराग से सदैव सुरभित रहे हैं। इन लोक-स्वरों में कल-कल शब्द करती दुई नदिया कमलों से मनोहर हैं। नीले, सफेद, एवं सुनहले कमलों से रंजित सरोवरों ने लोक-गीतों के स्वरों को बहुत नव-जीवन और नूतन राग दिया है। कमलों के अनेक नाम हैं। रंग-भेद से भी इनकी कतिपय उपजातियां हैं।

पद्म, नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्र पत्र, शतपत्र, सरसीरुह, विस प्रसून, राजीव, पुष्कर, कुशेशय, पंकेरुह, तामरस, सारस, अम्भोरुह आदि कमल के ही नाम हैं। सफेद कमल, नील कमल, लाल कमल आदि कमल के रंग भेद हैं।[2]

सुन्दर वदन, मनोहर आँखों, कोमल हाथों एवं ललित चरणों की तुलना में कमल का स्मरण बहुत समय से कवि लोग करते आए हैं। शरीर के इन पुनीत अवयवों के लिए कमल ही एक ऐसा उपमान है जिसका ग्रहण शिष्ट तथा लोक-साहित्य में समान रूप से किया जारहा है !

---

१ न तज्जलं यत्र सुचारु पङ्कजम्।
न पंकजं तद् यदलीन षट्पदम्।
न षट्पदोसौ न जुगुञ्ज यः कलम्।
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः।

२ देखिए अमरकोष प्रथमकाण्ड—वारिवर्ग पृ० ७१-७२

बुन्देली लोक-गीतों की निम्नस्थ पंक्तियों में कमल को उपमान के रूप में अङ्कित किया गया है :—

'कमल मुखीं राधा के अँसुआ चौमासे से बरसें।
दृग नीरज खंजन मदगंजन, कोकिल कण्ठ लजैयाँ।
'शिवदयाल' कहें सब तन इनकौ, रुचि-रुचि रचौ गुसैंयाँ।
कर कंजन से हमें बुलाती, चमका अँखियाँ गुँइयाँ।
ताके कमल वरन पद ताके, श्री वृषभानु सुताके।
ताके पाप दूर हो जै हैं, उड़हैं पुन्य पताके।

कमल से सुन्दर मुख पर, तिल की शोभा मनोहारिणी होती हैं। गोरे मुखड़े पर तिल गजब ढा देता है। वह सुन्दरता में चार चाँद लगा देता है।

एक उर्दू शायर ने खूब कहा है :—

तेरे रुकसार[1] पर काला जो तिल है।
किसी आशिक का जल भुनकर सिमट कर आगया दिल है।

कपोल के तिल पर लोक-कवि मनभावन की कितनी गहरी कल्पना है। कमल कली पर मानों भ्रमर ही बसेरा ले रहा हो।

"बरबस हरें लेत मन मेरो, तिल कपोल कौ तेरो।
कैधों सरस चन्द में बुन्दा, कै जमुना जल केरो।
कैधौं दवे गुराई भीतर, दै गये श्याम दरेरो।
कैधौं कमल कली के ऊपर ले गयो भ्रमर बसेरो।
'मनभावन' कहें नजर मिलाकें रजउ प्रेम से हेरो।

अपनो प्यारी रजउ के बाँये गाल पर तिल की हल्की श्यामता देखकर ईसुरी तो विह्वल हो गए थे। उन्हें भी पंकज (कमल) पर भ्रमर का बैठना सा लगा था। सन्देह अलंकार का यह कितना सुन्दर उदाहरण हैं :—

तिल की तिलन परन से हल्की,
बाँय गाल पर झलकी।

---

१ गाल

कै मकरंद फूल पंकज पै,
उड़ बैठन भई अलि की।
कै चू गई चन्द के ऊपर,
बिन्दी जमुना जल का।
ऐसो लगी 'ईसुरी' दिल में,
कर गई काट कतल की।

सलौनी आँखों की तुलना कमल फूल की पाँखों से करना, कवि की सूक्ष्म वस्तु-अभिव्यक्ति कही जायगी।

'बांकी रजउ तुमायी आँखें, रश्रो घूंघट में ढाँकें।
हमने अबै दूर से देखीं, कमल-फूल सी पाँखें।
जिनखाँ चोट लगत नैनन की, डरे हजारन काँखें।
जैसी राखे रई 'ईसुरी, ऊसई रइयो राखें।

कमल अपनी सुन्दरता पर जब इठलाने लगते हैं, तब उसे अपमानित भी होना पड़ता है। दुनिया में एक से एक बढ़कर सुन्दर है। एक समय वृषभानु कुमारी को दिन में कृष्ण से मिलने के लिए आते देखकर कई प्रसिद्ध उपमानों को झुकना पड़ा था। कमल दलों को तो आंखें बन्द करनी पड़ी थीं।

'दिन के मिलने हेत सिवारी,
श्री वृषभानु कुमारी।
कुबले फूल कमल दल संपुट,
निघा[1] चकोरन डारी।
आवो भयौ जात रई भीतर,
मकरंदन अँधियारी।
श्री वृषभानु-भुवन में 'ईसुर',
दीपक देह दीवारी।

---

१ दृष्टि।

सागर (तालाब) में कमल का चंचल लहरों के स्पर्श से पुलकित होकर झूमना कितना सुन्दर लगता है। एक युवती पंकज के इस उल्लासमय झूमने की तुलना अपनी गोदी में झूलते हुए पुत्र से कर रही है।

"कमलमा झूमैं सगरा के बीच,
रामा—मोरा झूलै बलखबा गोदी में।

ग्राम-निवासिनी युवती की कल्पना बड़ी गहरी और अनुभूतिमय होती हैं! तालाब में खिले हुए कमलों का देखकर एक वियोगिनी परदेश गए हुए अपने प्रियतम के मुख की स्मृति कर लेती थी। वर्षा ने सब कमलों की श्री को नष्ट कर दिया। उनकी पंखुड़ियां छिन्न-भिन्न हो गईं। वर्षा के इस दुष्ट व्यवहार से व्यथित होकर वही सुन्दरी कहती है:

अरी निरदइया री–तैंनें मिटादई लीख।
मोरे रोवैं कमल से नैंनवा ये।

वर्षा काल में विरही राम ने भी जंगलों में फिरते हुए कराल काल को कोसा था, जिसने वर्षा ऋतु को भूतल पर लाकर सीताजी की गति, आनन, नेत्र, एवं पद के उपमान–हंस, चन्द्रमा, खंजन, कमल को छिपादिया था। इनके अभाव में भगवान राम विशेष आकुल हो गए थे। उपमानों को देखकर सीतापति राघवेन्द्र अपनी सीता के शरीरावयवों की स्मृति को हरी-भरी कर लिया करते थे।

कल हंस कलानिधि खंजन कंज,
कछू दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन पायन के,
अनुरूपक से मन मानि लिये।
यहि काल कराल ते सोधि सबै।
हठिके वरषा मिस दूर किये।
अवधौं बिनु प्राण पिया रहि है,
कहि कौन हितू अवलंब हिए।[1]

---

१ रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध—महाकवि केशवदास।

खिला हुआ कमल स्नेह की नवीनता और परिपुष्टि का द्योतक है। पंकज पंक (कीचड़) से उत्पन्न होने पर भी बड़ा भावुक है। श्याम के विछोह में यमुना के कमल खिले नहीं। वे मुरझाये रहे और अन्त में प्राणहीन हो गए। कवि की आँखों ने इस बात को सचाई के साथ देखा था।

'जब से श्याम गए हैं ब्रज सों,
जमुना को जल सूखौ।
ग्वाल बाल रोवत दिन काटें,
कमलन को मुख फीको।

लोक-गीतों में सरोवर तथा कमल प्रतीकों के भी रूप में प्रयुक्त हुए हैं! सागर समृद्धि का, कमल संतान का प्रतीक माना गया है। संतान न होने पर धन-वैभव निरर्थक है। परिवार के प्रतीक में भी कहीं-कहीं पर सागर (तालाब) का प्रयोग देखा गया है "सागर—जल, तृप्ति, शीतलता के भाव का भी द्योतक है। कमल उनकी शृंगार की फलित भावना का प्रतीक है। लहराने में आनन्द की सक्रिय व्यंजना है।"[१]

पूरब पच्छू बाबा के सगरवा,
पुरइन हलर देई पात रे।
आधे तलवा में हंस चुनै आधे में हंसिन,
तबहूँ न तलवा सुहावत, एक रे कमल बिनु।
आधे तलवा नाग बइठे, आधे नगिन बइठे।
तबहूँ न तलवा सुहावत, तो एक रे पुरइन बिनु।

कमलों से भरे हुए तालाब का दृश्य भारतीय जीवन में सदा जागरण एवं समुल्लास के भाव उपस्थित करता है प्रकृति की सुषमा सागर में हिलोरें मारती है और कमल के फूलों में वह साकार बन जाती है। प्राचीन समय में तालाबों को खुदवाना पुण्य माना जाता था। इनमें गाएँ जल पीकर प्यास बुझाती थीं और पुरइन को देखकर दर्शक की आँखें नव-जीवन-प्राप्त करती थीं। लोक-गीतों में कमलों से सुशोभित सरोवरों का वर्णन विशेष रूप से मिलता है :—

१ लोक-गीतों में काव्यगत सौन्दर्य—श्रीलक्ष्मीकांत वर्मा (सम्मेलन पत्रिका)

"ताल किनारे महल मोर सुन्दर,
तेहि बिच पुरइन हाले रे।
पुरुब पछिम मोरे बाबा क सगरबा,
पुरइन हालर देइ।
तेहि घाटें दुलहे धोतियाँ पखारें,
पूछें दुलहिन देई बात।[१]
सगरा खनाए क बड़ फल,
जो जल ओगरई हो।
गउवा पिअहँ [२]जुड़ पानी,
त पुरइन[३] लहरइ हो।

कमल अपने पत्तों से जल को सूर्य के आतप से बचाता है। कमल का यह कार्य अपने जनक (पिता) के प्रति भक्ति-पूर्ण है। इसीलिए धर्म-शास्त्र में कमल-पत्र का तोड़ना उचित नहीं कहा गया है। जैसे जलज के पत्तों के टूट जाने से जल उघारा हो जाता है उसी प्रकार भाई के अभाव में बहन और बहन के अभाव में भाई छायाहीन बन जाता है। कितनी सुन्दर भावना है :—

"जल की पुरइन न टोरै साहब,
जल उघारी होय।
भाई बहिन अस न टूटै साहब,
पीठ उघारी होय।

कमल के समान फूलने में उल्लास की चरम सीमा लक्षित है। आशीर्वादात्मक गीतों में 'कमल अइसे फूला हो' की बारंबार आवृत्ति देखी गई है :—

'अमवा[४] के नाँई[५] लाला करहा[६],
अमिलिया[७] से झपरा[८]।
दुबिया[९] के नांई तुम छछला[१०],
कमल अइसे फूला हो।
कमल अइसे फूला हो।

१ कविता कोमुदी तीसरा भाग, २ ठंडा, ३ कमल, ४ आम का पेड़, ५ समान, ६ बौर आना, ७ इमली का पेड़, ८ सघन होना, ९ दूब, १० फैलाना।

अमवा के नाई बाबू मउरें,
महुअवा कँच लागें।
पुरइन पात जस पसरें कंवल दस बिहसें।

प्राचीन समय में चित्रकला की ओर हमारी बहू बेटियों की विशेष रुचि थी। घरों की दीवालों पर श्री के प्रतीक कमल के विविध रूपों में चित्र अंकित किए जाते थे। सास अपनी बहू से कमल-पत्र को चित्रित करने का आदेश दे रही है।

"यक ओरी लिखौ बहुअरि पुरइनि, रे,
यक ओरी लिखौ बँसवार।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है भावाभिव्यक्ति में कमल का लहराना एक सुन्दर संकेत है। प्रियतम से मिलने के लिए आतुर हृदय का लहराना पुरइन के लहराने के ही समान है।

"भरा ताल जल हलकै,
पुरइन लहरा लेय।
साजन के मिलन का,
जिया लहरिया लेय।

कमल सहित सरोवर का दर्शन पुनीत माना गया है स्वप्न में इस प्रकार के रमणीय तालाब का देखना गर्भिणी स्त्री के लिये उत्पन्न सुन्दर पुत्र-जन्म का परिचायक है।

परम पूज्या महारानी त्रिशला ने १६ स्वप्नों के अन्तर्गत कमलसहित सरोवर को भी देखा था। फल पूछने पर उन्हें बताया गया था कि उनकी कोख से परम सुन्दर शिशु जन्म लेगा। (कुछ मास बाद भगवान महावीर का जन्म हुआ था)

"सर कमल सहित फल सुनहु जोग,
लक्षण व्यंजन जुत तन मनोग।[1]

बुन्देलखंड का लोक प्रिय नृत्य राई है। इसमें रसीले गीत गाए जाते हैं। गायिका के साथ वाद्ययंत्रों को बजाने वाले भी कम रसिया नहीं होते हैं। प्रश्नोत्तर के रूप में गाए जाने वाले गीत रसिकता के सुन्दर उदाहरण होते हैं।

श्री वर्द्धमान पुराण पृष्ठ १०१

नृत्य-रत युवती से सारंगी बजाने वाले ने झूम कर कहा—

"हाथी पैं हौदा अरु घोड़े कौ झूल।

प्यारी, तोरी चोली में दो खिले कमल के फूल।

नर्तकी ने कजरारी अँखियों को तिरछी करके गाया।

फूल ऊनई मुरझाँय—जब तक सूरज निकलैना ...जब तक सूरज मिलैना।

कमल के फूल की यह नई कल्पना लोक-काव्य में ही प्राप्त हो सकती है।

कमनीय सौन्दर्य में सरसता और भावुकता का समन्वय होना उत्तम माना गया है। कमल की सुन्दरता अलौकिक होती है। क्षण-क्षण जल का स्पर्श उसे रसमय बना देता है। ऐसे अरविन्द (कमल) में मानवता का आरोप स्वाभाविक ही है। निम्नस्थ भोजपुरी लोक-गीत की पंक्तियों में श्रवणकुमार की मृत्यु पर कमल का कुम्हलाना अङ्कित करके लोक-कवि ने इस की (कमल की) मानवीय चेतना को साकार बना दिया है :—

तलवा[१] झरेले[२], कंवल[३] कुम्हलै[४] ले,
हंस रोवे विरह वियोग।
रोवत बाड़ी सरवन की माता,
के कांवर ढोइहे मोर।

कमल का जीवन अलौकिक है। सदैव जल में रहने पर भी वह पानी से अलग रहता है। उसके पत्तों पर पानी की बूँदे पारे की तरह चमकती हैं, फिर भी पत्तों पर जल का कुछ भी असर नहीं होता। इस विलक्षणता की ओर संकेत करते हुए हमारे धर्माचार्यों ने बताया है कि मनुष्य को जल-कमलवत् संसार में रहते हुए भी माया से दूर रहना चाहिए। इसी आदर्श को फाग में चित्रित किया गया है। लोक-कवि का यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण स्पृहणीय है :—

जैसे जल में पुरइन उपजै,
जल ही मा करै पसारा।
वाके पात-पानि नहिं बेधै,
ठहरि जाय ज्यों पारा।

---

१ तालाव, २ सूख गया, ३ कमल, ४ कुम्हला गया।

भगवान कृष्ण ने भी कमल-पत्र का उल्लेख करते हुए भक्तों को संसार की माया से अलिप्त रहने का उपदेश दिया है, और कहा है कि :—

'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि, संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्म पत्रमिवाम्भसा ॥'

(अध्याय ५ श्लोक १०)

हे अर्जुन ! देहाभिमानियों द्वारा यह साधन होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग सुगम है, क्योंकि जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है वह पुरुष जल से भिन्न कमल के पत्ते की सदृश पाप से लिपायमान नहीं होता।

[1]रूपकाति शयोक्तिअलंकार में कमल का उल्लेख प्रायः होता ही रहता है। लोक-गीतों में भी इस अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ हैं :—

जो तन बाग बलम को नीको, सिंचो सुहाग अमी को।
श्री फल फरे धरे चोली में, मदरस चुअत लली को।
लेत पराग अधर पै मधुकर, विकसी कमल कली को।
'ईसुर' कहत बचाएँ रहिओ, छुए न छैल गली को।

सुन्दरी ने अपने शरीर को बाग बनाकर अपनी सरसता की व्यंजना की है। यह सुन्दर बगीचा किस को प्रिय न होगा ?

महाकवि सूरदास ने भी अपने दृष्ट कूट पद में एक अनुपम बाग का संकेत किया है :—

अद्भुत एक अनूपम बाग,
युगल कमल पर गजवर क्रीड़त ता ऊपर सिंह करत अनुराग।
इत्यादि

कंस के अत्याचारों को समाप्त करने के लिए भगवान कृष्ण ने अवतार लेकर माता देवकी की गोद को आनन्द से भर दिया था। लीमाधाम ईश्वर

१ जहाँ केवल उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध कराया जाय, वहाँ रूपकातिशयोक्ति होती है।

के जन्म पर चराचर प्रसन्न थे। कमल भी इस समय मुदित होकर भगवती देवकी के आँगन में फैलना चाहता है। मैथिली लोक-गीत की ये पंक्तियाँ कितनी ललित हैं :—

'पुरइन कहए हम पसरव,
अपने रंग पसरब हे ललना।
पसरव देवकी के आँगन,
अपने रंग पसरव हे।'

कमल कहता है मैं फैलूँगा।
अपने रंग में फैलूँगा हे ललना।
फैलूँगा देवकी के आँगन में,
अपने रंग में फैलूँगा।[1]

उरोज और सरोज की मित्रता भी रसिक-मन की उपज है :—

कर कौशल कर कँपइत रे।
हरबा उर टार।
कर-पङ्कज उर थपइत रे।
मुख चंद निहार।

कौशलपूर्वक कंपित हाथों से उन्होंने उरोज पर लटकते हुए हार को टाला और अपने सरोजरूपी हाथों से उरोज छूकर वह मेरे मुखचन्द्र को चकोरवत् देखने लगे।

कमल कोमल होने पर भी कंटकित है। सरसिज (कमल) में भी काँटे लगा देना कहाँ की चतुरता है, लेकिन विधि-विधान विलक्षण होता है।

एक संथाली युवती कमल को कंटकों से युक्त देख कर आश्चर्य करती है। उसका यह प्रश्न ईश्वर लीला की अलौकिकता पर सकेत कर रहा है फिर भी वह हृदय मिलन पर प्रसन्न हैं।

उपाल चेकाते जानुमाना ?
कुइण्डी चेकाते सुनुमाना ?

१ बाजत आबे ढोल-श्री देवेन्द्र सत्यार्थी पृष्ठ ३१।

होपोन एटाक् रेन, एटाक् रेन होपोन एरा,
दूरे चेकाते मन मिलाउ एन। (दोङ)

कमल में काँटे कैसे होते ?
कोईन (महुए के बीज) में तेल कहाँ से आता ?
दूसरे का लड़का, दूसरे की लड़की,
दोनों का मन कैसे एक हो गया ?[1]

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कमल को कंटकित बताया हैं :—

कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ।
(बैरवै रामायण अयो०)

कमल में काँटों का होना सबको अप्रिय लगता है। महाकवि बिहारी की दृष्टि में गुलाब की कटीली डाल में सुन्दर फूलों का खिलना विधाता की भूल ही है लेकिन बड़ों की भूल की ओर कौन अँगुली उठा सकता है :—

'को कहि सकै बड़ेनु सौं, लखैं बड़ी यौं भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल।
(बिहारी रत्नाकर दोहा ४३१)

कमल को अवलंबन बना कर कविवर वृन्द ने तो कई नैतिक सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है :—

धन बाढ़े मन बढ़ि गयो, नाहिन मन घट होय।
ज्यों जल संग बाढ़ै जलज, जल घटि घटै न सोय।
इक समीप बसि अहितकर, इक हित करि बिस दूर।
हंस बिनासै कमल दल, अमल प्रकासै सूर।
जैसे बंधन प्रेम कौ, तैसौ बंधन और।
काठहि भेदै कमल कौ छेद न निकरै भौर।
निपट अबुध समझै कहा, बुधजन बचन विलास।
कबहूँ भेक न जानि ही अमल कमल की बास।
(वृन्द सतसई)

---

१ संथाली लोक-गीतों में दाम्पत्य-जीवन-श्री डोमनसाहू (जनपद खण्ड १ अङ्क ३)

कमल-कली पर आधारित केवल एक दोहे को कहकर महाकवि बिहारी ने जयपुराधीश महाराजा जयसिंह को नवीन-परिणीता एवं अल्प वयस्का महारानी के अत्यधिक मोह से बचाकर राज्य-कर्म में लीन किया था :—

नहिं परागु, नहि मधुर मधु नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल।
(बिहारी रत्नाकर दो० ३८)

कमल- अन्योक्तियाँ अनेक हैं, जिनके माध्यम से धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक तथ्यों का पूर्ण विवेचन हुआ है। सन्तों ने कमल को अपनाकर बहुत कुछ कहा है।

काहेरी नलिनी तूं कुमिलानी।
तेरे ही ताल सरोवर पानी।

जल में उतपति, जल मैं वास, जल मैं नलिनि तोर निवास।
ना तलि तपति न ऊपरि लागि, तोर हेत कह कासानि लगी।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान[1]।

कमल माहिं पाणी भयौ, पाणी मांहे भान।
भान मांहि ससि मिल गयौ, सुन्दर उलटौ ज्ञान।[2]
एको सरवरु कमल अनूप, सदा विगासै परमल रूप।
ऊजल मोती चूगहि हंस, सरब कला जग दीसै अंस[3]।

उलटिउ कमल ब्रह्म विचारि,
अंम्रित धार गगनि दस दुआरि[4]।

कमल का जल से स्वाभाविक स्नेह है। सच्ची प्रीति की स्मृति में कमल का नाम हमेशा जीवित है।

---

१ संत काव्य (भूमिका) पृष्ठ ८१
२ ,, ,, १०२
३ ,, पृष्ठ २४३
४ ,, पृष्ठ २४३

जैसे जल से प्रीति कमल की,
तैसे तुम से मोरी ।
स्याम भूल जिन जइयो मोखां,
रोवै राधा गोरी ।

सुमर सरोवर हंस जल, घटतहि गयऊ बिछोह ।
कँवल प्रीति नहिं परिहरै, सूखि पंक बरु होइ ।
(पद्मावत)

प्रेमी और प्रेमिका की मौन भावनाओं को प्रकट करने में कमल ने बहुत सहयोग दिया है लाज से झुकी हुई अँखियों ने हरि को देखना चाहा लेकिन वे ऊपर न उठ सकीं । सलोने श्याम ने विवशता को पहचाना और कमल की खिली हुई पंखुरियों को एकत्रित करके पंकज का मुँह मूँद लिया । दोनों के गालों पर मृदु हास्य फैल गया । मिलन-समय का संकेत पाकर विकल राधा के हृदय को शान्ति मिली :—

लखि गुरुजन बिच, कमल सौं, सीसु छुवायौ स्याम,
हरि-सनमुख करि आरती, हियैं लगाई बाम ।
(विहारी सत ई ३४)

पंकज कौ मुख मूँदों हरि ने
राधा जू के आगे ।
साँझ परे मिलि हैं यमुना तट,
ग्वाल बाल कह भागे ।

मानव-हृदय को कमल के रूप में कल्पित करने की भावना पुरातन है । भक्तों ने अपने हृदय-कमल में भगवान को स्थापित कर स्वयं को भाग्यशाली माना है । सेवक की सेवा से भरी प्रार्थना है कि वह उसके हिय-अंबोज में निवास करे । गोस्वामी तुलसीदासजी तो यही विनय करते रहे कि—

'श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन, हरण भव भय दारुणम्,
नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम ।'

इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनम् ।
मम हृदय कंज निवास कर, कामादि खल-दल गंजनम् ।

—इत्यादि

योगमार्ग (हठ योग) के अनुसार मानव-शरीर में अनेक कमलों की स्थापना हुई है। अध्यात्मवाद का प्रतीक यह कमल भारतीय दर्शनों में सदैव पूज्य माना गया है।"............

इसके ऊपर चार दलों का एक कमल है जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं। फिर उसके ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है जो छह दलों के कमल के आकार का है। इस चक्र के ऊपर मणिपूर चक्र है और उसके भी ऊपर हृदय के पास अनाहत चक्र है। ये दोनों कमशः दस और बारह दलों के पद्म के आकार के हैं। इसके ऊपर कण्ठ के पास विशुद्धाख्य चक्र है जो सोलह दल के कमल के आकार का है।...... इत्यादि।१

वेदान्त में कहा है—उस ब्रह्म की इस नगरी में एक छोटा कमल है, जिसमें छोटा-सा स्थान है। इसके भीतर जो छोटा-सा आकाश है, उसमें जो है उसे ढूढ़ो और उसे ही जानो। (यदिदमस्मिन् ब्रह्म पुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म, दहरोऽस्मिन्नंहराकाश तस्मिन् यदन्तः तदन्वेष्टव्यम्। तद वाव विजिज्ञासितव्यम्) (छान्दोग्य ८-१-१)

पद्मावत मूल और सञ्जीवनी व्याख्या—
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (पृ० ५२)

सन्त लोक-गीतों में भी ये ही भाव प्रदर्शित हुए हैं :—

हिय कौ कमल बन्द जब होवै,
तब हीं प्रानी सोवै।
जा देही में कमल अठोत्तर,
को कह बानी खोवै।

लोक-कथाओं में भी कमलों का वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यहाँ कमल मनुष्य की बोली बोलते हैं। भूत बनकर तालाब में डूबते हैं और हंस

१ हिन्दी साहित्य की भूमिका (योग मार्ग और सन्त मत) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-पृष्ठ ६३।

बन कर आकाश में उड़ जाते हैं। लोक-कहानियों के कमल मन्त्र-तन्त्र जानते हैं और इसीलिए कभी चींटी बनते हैं तो कभी हाथी। एक भाई तालाब में डूब कर कमल बन जाता है और पास में नहाने वाली अपनी बहन के सिर पर बैठता है। कमल विषयक लोक-कथाएँ बड़ी मनोरंजक हैं।

कमल के सम्बन्ध में अनेक पहेलियाँ भी प्रचलित हैं। कुछ ये हैं :—

(१)

जल में उपजै,
जल में बसै।
फिर भी जल से,
हट कर हँसै। (कमल)

(२)

जल में उतपति,
जल में बास।
जल सूखे से,
होय उदास ॥ (कमल)

(३)

जी में उपजी लछमी मैया
ऊको नाम बताओ भैया। (कमल)

(४)

जल में खड़ौ खम्भ की नाँई।
जाकी पूँछ पताल समाई। (कमल)

कहा जाता है कि रोटी और कमल के द्वारा ही सन् १८५७ के विद्रोहकी क्रान्ति ने जन्म लिया था।

कमल विश्व की सृष्टि का मनोहरतम सौन्दर्य है। अध्यात्मवाद की प्रतीक

योजना में कमल का सर्वोच्च स्थान है। साहित्य की सरसता कमल की मधु से जीवित है।

लोक-गीतों की रसीली अनुभूतियाँ कमल के दर्शन से सप्राण बनी हैं। कमल की सुकुमारता और सुरभित सौन्दर्य को कौन भुला सकता है। कमलाक्षी विश्व की मोहन-शक्ति हैं। कमलानना ने संसार को विमुग्ध कर रखा है। पद्म-पद किसे आराध्य न होंगे? कर कंजों के दान से कौन उपकृत न होना चाहेगा? सृष्टि का अथ और अन्त कमल में ही स्थित है। भारतीयता का अमर प्रतीक कमल विश्वव्यापी है।
